भाग 3

" सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते "

# प्राचीन राजस्थानी गीत

## भाग—३

सम्पादक—

कविराव मोहनसिंह

प्रकाशक—

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

प्रथम संस्करण
वि० सं० २०१४

मूल्य
२॥)

प्रकाशक:—

अध्यक्ष

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

मुद्रक:—

व्यवस्थापक

उदयपुर प्रेस, उदयपुर

# विषय-सूचि

★★
★

# प्रकाशकीय

साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर पिछले १६ वर्षों से उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, एवं कला विषयक सामग्री की शोध-खोज, संग्रह, संपादन और प्रकाशन का काम करता आरहा है। विशेष कर साहित्य-संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास-पुरातत्व और कलात्मक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरंतर प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप लगभग ३० महत्व पूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। साहित्य संस्थान के अंतर्गत इस समय (१) प्राचीन-साहित्य विभाग (२) लोक-साहित्य विभाग (३) इतिहास-पुरातत्व विभाग (४) अध्ययन गृह और संग्रहालय विभाग (५) राजस्थानी-प्राचीन-साहित्य विभाग (६) पृथ्वीराज-रासो संपादन विभाग (७) भील-साहित्य संग्रह विभाग (८) नव साहित्य-सृजन कार्य एवं (९) सामान्य विभाग विकसित हो रहे हैं। सामान्य विभाग के अन्तर्गत बून्दी के प्रसिद्ध राजस्थानी कवि श्री सूर्यमल की स्मृति में 'महाकवि सूर्यमल आसन' और प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता महामहोपाध्याय डॉ० गौरीशंकरजी की यादगार में 'ओझा आसन' स्थापित किया है। संस्थान की मुख-पत्रिका के रूप में त्रैमासिक 'शोध-पत्रिका' का प्रकाशन किया जाता है एवं नवीन उदीयमान लेखकों को लिखने के लिये प्रोत्साहित करने की दृष्टि से उनकी रचनाओं का प्रकाशन कार्य चालू किया गया है। इस प्रकार साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर अपने सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी-साहित्य, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्र में विभिन्न विघ्न-बाधाओं के बावजूद भी निरंतर प्रगति और कार्य कर रहा है। राजस्थान की गौरव गरिमा की महिमामय झांकी अतीत के पृष्ठों में अंकित है—आवश्यकता है; उसके सुनहले पृष्ठों को खोलने की। साहित्य-संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है।

प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-संस्थान के संग्रह से तय्यार की गई है। साहित्य-संस्थान के संग्राहकों ने अनेक स्थानों से ढूढ ढांढ कर १६,००० के लगभग छन्दों का संग्रह किया है। इस संग्रह में दोहे, सोरठे, कवित्त और गीत आदि कई प्रकार के छन्द सुरक्षित हैं। इन छन्दों में विभिन्न ऐतिहासिक और सामाजिक घटनाओं, व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार के

गीत और छन्द लाखों की संख्या में राजस्थान के नगरों कस्बों एवं गांवों में बिखरे हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी साहित्य का परिचय मिल सकेगा तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ेगा। इस प्रकार साहित्य-संस्थान, राजस्थान में पहली संस्था है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम कर रही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जा सकते थे लेकिन साधन सुविधाओं के अभाव में साहित्य संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन राजस्थानी साहित्य और लोक-साहित्य के प्रकाशन-कार्य के लिये भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान को कृपा कर ५७,०००) सत्तावन हजार रुपये की सहायता प्रदान की है; उसी से उक्त पुस्तक का प्रकाशन-कार्य सम्पन्न हो सका है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान सरकार के मुख्य मन्त्री (जो शिक्षा मन्त्री भी हैं) माननीय श्री मोहनलाल सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिकारियों का पूरा योग रहा है। इसके लिए मैं, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं। साथ ही भारत-सरकार के उप-शिक्षा सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा श्री सोहनसिंह एम. ए. (लंदन) का भी अत्यन्त आभारी हूं; जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और समय पर दिलवाई। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा और सहायता से ही यह रकम मिल सका है और संस्थान अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवा सका है। भारत-सरकार के राज्य शिक्षा मन्त्री डॉ० कालूलालजी श्रीमाली के प्रति क्या कृतज्ञता प्रकट की जाय; यह तो उन्हीं का अपना काम है। उनके सुझाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान के काम में निरन्तर विकास और विस्तार हुआ है और आगे भी होता रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ मैं, उनका आभार मानता हूं। अन्य उन सभी का आभारी हूं; जिन्होंने इस काम में सहायता दी है।

विनीत—

दीपमालिका
२०१४, सन् १९५७

गिरिधारीलाल शर्मा
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान

# संस्था की ओर से

●●

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के अन्तर्गत आज से १९ वर्ष पूर्व प्राचीन साहित्य की शोध-खोज, संग्रह-सम्पादन और प्रकाशन-कार्य के लिये "प्राचीन-साहित्य-खोज विभाग की स्थापना की गई थी। तब से आज तक इसके नाम में, कार्य और प्रवृत्तियों के विकास एवं विस्तार के साथ अनेक परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। इस समय इसे साहित्य-संस्थान के नाम से अभिहित किया जाता है। प्राचीन साहित्य की शोध-खोज के अलावा आज इसमें लोक-साहित्य, इतिहास, पुरातत्व एवं कला-विषयक सामग्री का संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन किया जाता है। नवीन साहित्य के सृजन एवं विकास के लिये क्षेत्र और वातावरण पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रतिभाशाली और उदीयमान लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन की समुचित व्यवस्था करने के लिये साधन सुविधाएँ एकत्रित की जाती हैं और उनके लिये अवसर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। साहित्य-संस्थान में विगत डेढ़ युग से भारतीय-साहित्य, उसकी संस्कृति और विविध-कलात्मक सामग्री के पुनर्शोधन के लिये कार्य किया जाता रहा है। संस्थान की ओर से अब तक कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये जा चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं में से एक है।

उन्नीस वर्षों के अथक परिश्रम और अध्यवसाय के परिणाम स्वरूप ही आज प्राचीन राजस्थानी-साहित्य के प्रकाशन का कार्य, साहित्य-संस्थान राजस्थान-विश्व-विद्यापीठ के द्वारा किया जा रहा है। विगत वर्षों के कार्य-काल में साहित्य-संस्थान के द्वारा हजारों की संख्या में प्राचीन राजस्थानी गीत (डिंगल), लोक-गीत, लोक-वार्ताएं, लोक-कहावतें, ख्यातें और मुहावरें आदि एकत्रित किये जा चुके हैं। लोक-कहावतों और लोक-गीतों की अब तक काफी पुस्तकें संस्थान की ओर से प्रकाशित की जा चुकी हैं।

राजस्थान में प्राचीन राजस्थानी और हिन्दी-साहित्य का अखूट भण्डार है। इसको अन्वेषण और सम्पादन किया जाय तो राजस्थानी जीवन के सामा-

जिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आदि विभिन्न अगों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। साहित्य के इतिहास में राजस्थानी प्रतिभाओं का कितना महत्वपूर्ण योग रहा है; इसका समुचित और सही परिचय आज तक विद्वानों और लेखकों को नहीं प्राप्त हो सका है। राजस्थान विश्व विद्यापीठ उदयपुर का निरन्तर यह प्रयास रहा है कि राजस्थान की ऐसी अन्धकाराच्छन्न प्रतिभाओं को प्रकाश में लाया जाय और उनके साहित्य की रस धारा से जन जीवन को परिचित करवाया जाय।

उपर्युक्त कार्य कितना मुश्किल और व्यय साध्य है; यह किसीसे छिपा हुआ नहीं है। साहित्य-संस्थान की ओर से अत्यल्प साधनों के होते हुए भी, जितना कार्य किया गया, वह विद्वानो के देखने और सोचने की बात है।

इस वर्ष राजस्थान सरकार की सिफारिश से भारत-सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय के द्वारा ५७,०००) की प्रकाशन सहायता स्वीकार की गई, इसके लिये मैं राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिवालय, उसके विभाग एवं भारत-सरकार के शिक्षा-विकास-अधिकारियों और सलाहकारों का अत्यन्त आभारी हूं। विशेष कर डॉ० कालूलालजी श्रीमाली राज्य शिक्षामन्त्री भारत-सरकार, डॉ० पी.डी. शुक्ला सलाहकार, शिक्षा-विकास-सचिवालय एवं डॉ० सोहनसिंहजी आदि के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ; जिन्होंने साहित्य-संस्थान के विकास के लिये कृपा कर सहायता स्वीकृत कराई।

आशा है; भविष्य में भी सभी का सहयोग निरन्तर मिलता रहेगा।

विनीत:—

जनार्दनराय नागर

प्रोप कुलपति

राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर

दीप-मालिका

वि. सं. २०१४

★★
★

## सम्पादकीय—

कवियों की काव्य-सृष्टि ईश्वरीय सृष्टि से भिन्न है। दोनों के निर्माता ब्रह्मा माने गये हैं। ब्रह्मा ने सृष्टि-निर्माण के साथ ही सर्व प्रथम वेद-रूप साहित्य का भी सृजन किया। उसी वेदवाणी का शुद्ध रूप संस्कृत हुआ, जिसमें विद्वानों द्वारा साहित्य के छः अंगों के नियम बांधे गये। पढ़े लिखे नागरिक संस्कृत में साहित्य-रचना करने लगे। उसी प्रकार प्रत्येक देशवासी भी अपनी बोलचाल को भाषा में साहित्य-सृजन करते रहे, जिसे आधुनिक विद्वान 'अपभ्रंश-काल' कहते हैं। इन अपभ्रंश भाषाओं में व्रज देशीय शौरसेनी, प्राकृत भाषा भाषियों ने सबसे पूर्व संस्कृत के समान ही नियमित काव्य-रचना करना आरम्भ किया। छंद शास्त्र का प्रथम आचार्य पिंगल हुआ। उसीके नाम पर शौरसेनी प्राकृत ने अपना नाम 'पिंगल प्राप्त किया अथवा वेद-वाणी से शुद्ध की गई भाषा जिस प्रका. संस्कृत (संस्कार-युक्त) अभिहित हुई, उसी प्रकार प्राकृत आदि भाषाओं से शुद्ध रूप प्राप्त की हुई भाषा पिंगल (उज्वल, पवित्र) नाम से प्रसिद्ध हुई। पुष्य बंदीजन ने संस्कृत के नियमित ग्रन्थों का अनुवाद सर्व प्रथम पिंगल में किया, ऐसा विद्वान् मानते हैं। वह आज अप्राप्य होते हुए भी इतना निश्चय है कि, पिंगल-साहित्य में नियमित रूप बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। 'पिंगल' को अपभ्रंशकालीन संग्रह-ग्रन्थों में "पैंगल" लिखा है। ग्यारहवीं शताब्दि के आमभट्ट आदि की कविता इसी पिंगल भाषा में है। महा कवि चंद वरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' में भी अन्य षड्भाषाओं आदि का पुट होते हुए भी उसकी भाषा का स्वरूप अधिकतर पिंगल का ही है और यह भी अनुमान होता है कि, महाकवि चंद ने छंदों का कोई नियमित ग्रन्थ 'रासो' से भिन्न लिखा था, वह भी सम्भवतः 'रासो' में मिल गया हो। यही पिंगल शनैः २ परिमार्जित रूप प्राप्त करके ब्रज भाषा बन गई और आगे चल कर अधिक शुद्ध हो आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा के उत्थान में सहयोग दे सकी।

जैनी एवं अन्य महात्मा, संतों ने भी साहित्य-सृजन किया है, किन्तु वह केवल 'संतवाणी' के रूप में आदर-दृष्टि से देखा जाता है. साहित्य के निकष ( कसौटी ) पर खरा नहीं उतर सकता. क्यों कि, उसमें कहीं छन्द लम्बा हो जाता है तो कहीं पर छोटा अर्थात् छन्दोभंग होना, जो छन्द-शास्त्र की दृष्टि से दूषित है। यद्यपि उसका साहित्य-भंडार विशाल है, फिर भी वहां रसपोषक विभिन्न वृत्तियों का अभाव-सा है और न सबों के लिये उसकी उपलब्धि ही सम्भव है।

पिंगल के समान साहित्य-सृजन एक मात्र 'डिंगल' में ही हुआ है। 'डिंगल' भाषा, प्राचीनकाल में 'मरु-भाषा' कही गई है, उसके बाद यह डिंगल कहलाई। 'डिंगल' शब्द की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कोई इसका रूप 'डगल' से बना मानते हैं, जिसका अर्थ होता है, सुथरे पन से रहित अर्थात् अनघड़, ऊबड़ खाबड़ भाषा। कोई इसका रूप 'डिमगल' से बतलाते हैं, जिसका आशय शिव के डमरू की 'डिम-डिम' ध्वनि से 'डींग' हांकने वाली ( अतिशयोक्ति पूर्ण ) भाषा कहते हैं। इस विषय में मेरा तो अनुमान यह है कि, पढ़े लिखे व्यक्ति 'पिंगल' में रचना करते थे, लेकिन चारण लोग युद्ध-समय में वीरों को प्रोत्साहित करने के लिये बोल चाल की भाषा में तात्कालिक रचना करते, जो ओजवर्धक होती थी। इसी कारण से इसका नाम 'दंगल भाषा' किया गया हो, जिसका आशय 'युद्ध-समय में ओज-वृद्धि करने वाली भाषा' है।

प्राचीन रचनाओं में युद्ध-समय मारु राग, सिन्धु राग का उल्लेख आता है, वह वीर-गान इसी भाषा में होता था[1], यह स्पष्ट है। अतः इस भाषा का 'दंगल' नामकरण किया जाना सार्थक है. जो आगे चल कर स्वाभाविक क्रम से 'डंगल' एवं 'डंगल' से 'डिंगल' हो गया है। आज भी राजस्थान में 'द' के स्थान पर 'ड' बोला जाता है, जैसे दूलहसिंह को डुलेसिंह, 'दालान' को 'डेलान' देहरी को 'डेरी', 'देग' को 'डेग' आदि।

टिप्पणी:—१ राजस्थानी रचना की प्रारंभिक देन उन सिंधु एव मारू राग गाने वाले गायकों की भी है, उसे नहीं भुलाना चाहिये।

प्रारम्भ में इसकी रचना १२ वीं शताब्दि में लोकगीतों के रूप में हुई जो (गीत) परवाड़ा (बगड़ावत, पाबू एवं राम पीर आदि के नाम पर) गाये जाते थे[२]। उसके बाद नियमित साहित्य के रूप में इसमें कब से साहित्य सृजन होने लगा, इसका प्रमाण न होते हुए भी यह निश्चित है कि १४ वीं, १५ वीं शताब्दी से इसमें नियमित रचना होने लग गई थी और १६ वीं शताब्दी में तो इस भाषा में लिखने वाले अच्छे २ कवि हो गये हैं। प्राचीन समय से यह मरु भाषा और इसके बाद 'दंगल' (डिंगल) भाषा कहलाई। इसे 'राजस्थानी' नाम बहुत पश्चात् दिया गया है; किन्तु इस प्रदेश का नाम 'राजस्थान' बहुत प्राचीन है; जिसका उल्लेख आबू के वर्णन में मिलता है। इस प्रदेश में राजाओं के राज्य की बहुलता से ही यह राजस्थान कहा गया है। अंग्रेजों के शासन-समय में यह राजपूताना कहलाता था, वह भी 'राजस्थान' का ही रूपान्तर है।

राजस्थान से सम्बन्ध होने के कारण ही इसका नामकरण आधुनिक समय में "राजस्थानी" हुआ है। छः भाषाओं के ज्ञाता कविवर सूर्यमल मिश्रण भी उसी प्राचीन रूप में इसे 'मरुदेशीय प्राकृत' लिखते हैं।

डिंगल में नियमितता 'पिंगल' से ही आई है और पिंगल छन्दों से ही इसके 'गीत' पद्यों का प्रादुर्भाव हुआ है, यह बात पिंगल भाषा के धुरंधर चारण कवि योगिदास ने स्वरचित 'हरिपिंगल प्रबन्ध' में स्पष्ट रूप से लिखा है। वे लिखते हैं,—पिंगल के 'झूलना' आदि छन्दों से २४ प्रकार के पिंगल गीतों की रचना[३] हुई। उसके बाद मारवाड़ निवासी कवि मंछाराम भोजक ने डिंगल का

---

टिप्पणी:—२ देखिये 'सौरभ पत्रिका' के अंतर्गत राजस्थानी विषयक लेख"—
ले- किशोरसिंहजी बारहठ।

टिप्पणी:—३ 'हरि पिंगल' की रचना वि. सं. १७२० — २१ में हुई। उसमें चारण गीतों के विषय में लिखा है,

"चारण गीत चवीस इव, गाथा बीस समात।"

"पुणि यो गीत रतन पनरहमो, आदि पिंगल जल डोह अगाध॥"

नियमित ग्रन्थ 'रघुनाथ रूपक' लिखा । उसमें उन्होंने डिंगल पद्य 'हरि पिंगल प्रबन्ध' से अधिक (७२) संख्या में बतला कर 'पिंगल' भाषा से ही 'डिंगल' के पद्यों का आदि होना माना है[4]। अतः स्पष्ट है कि, 'पिंगल' ग्रन्थों से ही डिंगल को काव्य-नियमों से बांधा गया है ।

पिंगल के आचार्यों ने काव्य-दोष पर काफी प्रकाश डाला है । उनमें से डिंगल में केवल ( १ ) अंध दोष ( उक्ति के स्वरूप को रोंध देना, बाधक होना ), ( २ ) छप काल ( भाषा विरुद्ध, भिन्न २ भाषा का होना ), ( ३ ) हीण दोष ( जिसका वर्णन किया जाय, उसका पद्य से पूरा परिचय न मिलना ), (४) नीनँग (बे ठिकाने का वर्णन हो, वर्ण्य विषय क्रम से नहीं), ( ५ ) पांगलो ( छंदो भंग ) ( ६ ) जात विरुद्ध ( छन्द विरुद्ध ), ( ७ ) अपस ( क्लिष्टार्थ ) ( ८ ) नाल छेद ( विषय हीन ), ( ९ ) पखट्ट ( अन्त्यानुप्रास का टूटना ), ( १० ) बेहरो ( शब्द-विरुद्ध ) इस प्रकार दस दोषों को ही लिये हैं । इनमें कुछ दोषों के लक्षणों और नामों को भी बदल दिया है ।

ऊपर कहा जा चुका है कि, 'हरि पिंगल प्रबन्ध' में कविवर योगीदास ने २४ और 'रघुनाथ रूपक' में मंछाराम ने ७२ प्रकार के राजस्थानी पद्य (गीत) माने हैं । परन्तु इस ( महाराणाओं के ) गीत-संग्रह में केवल—

> "धुरां झूलणा तणो पग तीन मात्रा धरे, जिण वयण मात तेवीस जाणे ।
> वयण बीजो वले झूलणा जिम वडो, इण वयण मात दश सात आणे ॥
> दूसरो भंग उतंग बयणे दिये, मलप तो झूलणा जेम मंडो ।
> जड़ो चौशे जती और सत रैं जड़ो, छिलेता रखे गण जोध छंडो ॥" इत्यादि ॥

४. रघुनाथ रूपक की रचना वि. सं. १८६३ में हुई । उसमें दग्धाक्षरों का कथन "पिंगल मतानुसार "ह, ज, भ, र, ष, न, ख, म, आदतज, पिंगल कह्यो प्रमाण" हुआ है । इसी प्रकार दस दोषों को भी पिंगल मतानुसार "सुर भूमि पाठ पिंगल मता साहित वेदक सारणे । कहे मंछ भलां रूपक करो औ दश दोष निवारणे" ॥२३॥ माना है । अन्त में इसी ग्रंथ में गीतों को भी पिंगल छंद के अन्तर्गत—

"रूप कथह रघुनाथ रो, पिंगल गीत प्रमाण"

ही लिखा है । अस्तु, स्पष्ट है कि, डिंगल को काव्य-नियम आदि की देन एक मात्र पिंगल की ही है ।

१ बड़ा साणौर

२ छोटा साणौर

३ बड़ा सावझड़ा

४ छोटा सावझड़ा और—

५ सुपंखरा, नामक पांच जाति के गीत ( पद्य ) ही संग्रहीत हो पाये हैं, जो राजस्थानी साहित्य में अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके लक्षण सरल रूप में इस प्रकार है—

१ बड़ा साणौर ( मात्रिक छन्द )

| चरण | — | मात्रा |
|---|---|---|
| १ | — | २३ |
| २ | — | १७ |
| ३ | — | २० |
| ४ | — | १७ |

आगे क्रमशः २०, १७ मात्रायें प्रत्येक चरण में होती हैं। तुकांत में गुरु ( S ) होता है।

२ छोटा साणौर ( मात्रिक )

| चरण | — | मात्रा |
|---|---|---|
| १ | — | १८ |
| २ | — | १५ |
| ३ | — | १६ |
| ४ | — | १५ |

आगे क्रमशः १६, १५ मात्रायें प्रत्येक चरण में होती हैं। तुकांत में गुरु लघु ( SI ) आते हैं।

३ बड़ा सावझड़ा ( मात्रिक )

| चरण | — | मात्रा |
|---|---|---|
| १ | — | २० |

| | | |
|---|---|---|
| २ | — | २० |
| ३ | — | २० |
| ४ | — | २० |

सब में अन्त्यानुप्रास एवं तुकांत में गुरु, लघु गुरु (SIS) होता है।

४ छोटा सावझड़ा ( मात्रिक )

| चरण | — | मात्रा |
|---|---|---|
| १ | — | १६ |
| २ | — | १६ |
| ३ | — | १६ |
| ४ | — | १६ |

चारों चरणों में अन्त्यानुप्रास एवं तुकांत में गुरु, लघु, लघु (SII) होता है।

५ सुपंखरा ( वर्ण वृत्त )

| चरण | — | वर्ण |
|---|---|---|
| १ | — | १८ |
| २ | — | १४ |
| ३ | — | १६ |
| ४ | — | १४ |

आगे क्रमश; १६, १४ वर्ण प्रत्येक चरण में होते हैं और तुकांत में गुरु, लघु (SI) आते हैं—

शब्द ग्रहण करने में भी राजस्थानी कवियों ने पिंगल में रचना करने वाले कवियों के विचारों:—

"मिले संस्कृत, पारसी, पै अति प्रकट जु होय।" को ही काम में लिया है। उन्होंने अपनी पिंगल भाषा का मूल स्वरूप रखते हुए भी संस्कृत यवन भाषा आदि को अपनाया, उसी प्रकार राजस्थानी कवियों ने भी अपनी भाषा का मूल स्वरूप बनाये रखते हुए भी संस्कृत, फारसी एवं समीपवर्ती देशों

की भाषा को शनैः २ शुद्ध एवं कुछ विकृत रूप में अपनाई है। यद्यपि डिंगल में कटु वर्णों की बहुलता है, फिर भी इसमें रस-पुष्ट करते समय वीर रस के अतिरिक्त शृङ्गार आदि रसों के वर्णन में कोमल एवं सरस शब्दों को भी काम में लेकर भिन्न २ वृत्तियों की भी पूर्ति की है।

पिंगल और ब्रज भाषा में जिस तरह अणुमात्र अन्तर रहा है, उसी प्रकार डिंगल के प्राचीन और उसके बाद के पद्यों की भाषा में भी कुछ ही अन्तर दीख पड़ता है। पिंगल-रचना फुटकर और ग्रन्थ रूप में अधिक हुई, परन्तु डिंगल-रचना ग्रन्थ रूप में कम और फुटकर रूप में ही अधिक लिखी जाती रही है। फिर भी दोनों में समान रूप से ही विकास हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि पिंगल के समान डिंगल-रचनायें ही काव्य-रूप को लिए हुए कही जा सकती हैं।

डिंगल-साहित्य का संग्रह और प्रकाशन अब तक नाम मात्र को ही हुआ है; किन्तु संग्रह की दृष्टि से राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर का कार्य अधिक स्तुत्य है। अभी तक केवल मेवाड़ में ही राजस्थानी पद्यों का संग्रह ठीक संख्या में हो सका है, जिसमें सभी रसों और उच्च भावों की रचनायें दृष्टिगोचर होती हैं।

राज. वि. विद्यापीठ साहित्य-संस्थान, उदयपुर द्वारा यह (राजस्थानी भाग ३) संग्रह प्रकाशित होरहा है। इसमें रावल बापा और खुमाण पर लिखे गये गीतों के बाद राणा गढ़ लक्ष्मणसिंह से लेकर क्रमशः महाराणा भीमसिंह तक के गीत (पद्य) चुने हुए हैं, जिनमें सभी महाराणाओं के यथेष्ट गुण, उदारता और शौर्य आदि पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही इनकी ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन हुआ है।

महाराणाओं के विचार हिन्दू-धर्म और हिन्दू सत्ता की स्थापना के लिये वंश-परम्परा से चले आये हैं, वे इन गीतों से स्पष्ट हो जाते हैं। इन पद्यों में अर्थालंकारों का भी चमत्कार है, किन्तु शब्द-सौष्ठव की तो एक प्रकार से कहीं २ पर लड़ी-सी बांध दी है। साधारण वर्णन को भी इतने सुन्दर ढंग से विस्तृत किया है कि, पढ़ते हुए जी नहीं ऊबता। राजसी

ठाट, युद्ध-वर्णन, हाथी घोड़े, शस्त्र आदि का सजीव वर्णन हुआ है। वीरों की प्रशंसा में तो कलम तोड़ दी गई है। वास्तव में वर्णन अनुभवों से अनुप्राणित है।

इन गीतों का संपादन मेरे द्वारा हुआ है, वह कैसा है, उसे तो विद्वान् ही समझ सकेंगे, फिर भी मैं अपने श्रम को इसी कारण सफल मानता हूं कि मेरे द्वारा राजस्थानी साहित्य की कुछ सेवा बन सकी है।

शरद्-पूर्णिमा, २०१४<br>
उदयपुर ( राजस्थान )

कविराव मोहनसिंह<br>
संपादक

# प्राचीन राजस्थानी गीत

## ( भाग–३ )

### [१] रावल बापा* द्वारा राज्य–स्थापन

गीत ( छोटा साणोर )

पुरबजां तणी अग्या जण पाली, पेहली लेतो जो प्रबल् ।
वसू जते मायरां वचाले, नापे लीधी खड़ग बल् ॥१॥

मोरी मार लियो मेवाड़े, भामी भुजा तणा गज भीम ।
राम लीह किम लोपे रावल्, सात समँद बच कीधी सीम ॥२॥

न्याय समत्र लोपियो न जावे, खत्रियाँ गुरूताय अडग खमी ।
बापे लीधी आप बाँह बल्, जोजन कोड़ पचास जमी ॥३॥

गढ, गढपत गहलोत गंजिया, कुल् मह देख एम कहियो ।
समंद परे न गियो सीसोदो, रामबांण माहै रहियो ॥४॥

( रचयिता:– अज्ञात )

अर्थ:—रावल बापा बड़े पराक्रमी थे। यदि वह चाहते, तो समुद्र के उस पार भी अपना अधिकार जमा सकते थे; परन्तु उन्होंने ( बीच समुद्र में विभीषण की लंका को लांघ कर ) अपने पूर्वज श्री रामचन्द्र की आज्ञा को

*:—रावल बापा ( काल भोज ) का समय वि. सं- ८१० तक माना जाता है। इनके विषय में कहा जाता है कि, इन्होंने चित्राङ्ग मोरी से लड़ाई लड़ कर चित्तौड़ को अपने अधिकार में कर लिया था। वैसे यह ईरान तक भी अपना विजय-ध्वज फहरा चुके हैं।

निरादृत करना उचित न समझा। इसीलिए वह—शस्त्र-बल के होने पर भी अपनी राज्य-सीमा का समुद्र के इस पार ही रखे रहे।

वह ( रावल बापा ) अपने को भीम के समान बलशाली समझते थे, भीम बाहु-बल से हाथियों को भी पछाड़ डालता था, परन्तु रामचन्द्र की मर्यादा ( देकर वापस न लेना ) किस प्रकार टाली जा सकती थी ? यही कारण रहा कि, उन्होंने चित्रङ्ग मोरी को पराभ्त कर सातों समुद्रों के बीच में केवल ( इस पार ही ) अपनी राज्य-सीमा रक्खी।

राजपूत-जाति सदैव शस्त्र धारण कर न्याय-पथ से च्युत नहीं हुई है। इसीलिए बापा रावल ने भी स्वयं के बाहु-बल से ( समुद्र के इस पार ही ) केवल पचास करोड़ योजन भूमि पर राज्याधिकार किया ( आगे नहीं बढ़े )।

गुहिलोत वश के वीर बापा ने ( जब ) समस्त सुदुर्ग-राजाओं को अपने अधिकार में कर लिया ( तो उनके बल की प्रशंसा करते हुए ) सबों ने यही कहा कि, यदि रामचन्द्र की मर्यादा ( देकर वापस न लेना ) बापा ने नहीं निभाई होती, तो निश्चय ही समुद्र पार भी ( इन्होंने ) अपना अधिकार जमा दिया होता।

## [२] रावल खुमाण* का मालवा पर आक्रमण

गीत ( छोटा साणोर )

खुमाण खीजियो जुतं खड्‌ग हथ, साहण समँद न रोहा मार।
सात समँद झल झलिया सायर, पाधर वहतै सीघ पमार ॥१॥

---

टिप्पणी:—खुमाण का राज्य-समय अनिश्चित है; लेकिन इस गीत का संबंध खुमाण दूसरे से होना पाया जाता है जो दसवीं शताब्दी के अन्त में मेवाड़ का राजा रहा। इन दिनों मालवा के परमारों का अभ्युदय हो रहा था। सम्भव है, उनसे खुमाण की कशमकश हुई हो, जो प्रतिहारों के एक सामन्त के रूप में थे।

बाप वला क्रम नमो बापा उत, आछटते केवाण असंक ।
एको साँक नाम अंगमतै, सात समंद मानिया संक ॥२॥
रेण रूक रस रमते रावल, झल झलिया दरियाव जल ।
धार उजेण सुपह धड़ छंते, चल चलिया दसहे अचल ॥३॥
चक्र अदीठ बाह चीतोड़ा, मालव राव तणा जोय मौत ।
सात रसां मौखल साथर, गढ गज्जणां डरै गहलोत ॥४॥

( रचयिता:– अज्ञात )

रावल खुमाण की सेना समुद्र–तुल्य थी, उसका शस्त्र नहीं रुकता था। जब क्रुद्ध होकर उस (खुमाण) ने तलवार उठा ली और सिंह रूपी (या सिंह-पद-धारी) पँवारों को सीधे रास्ते उतार दिया ( उनकी ऐंठ निकाल दी ) तब शस्त्र की चमक से सातों समुद्र झलमला उठे ।

हे बापा वंशज ( बापा के पुत्र )! तू अपने पिता के समान ही बल एवं पराक्रमशाली है । निर्भयता पूर्वक तलवार झाड़ने ( चलाने ) पर केवल एक शकारि ( पँवार ) ने तेरे नाम ( दुहाई ) को मान लिया, जिससे सातों समुद्र के प्रदेशों ने शंका मानली ( तेरे बल के आगे वे सशंक हो उठे ) ।

हे रावल ! पृथ्वी पर खड़ग का ( वीरोचित ) खेल खेलने (युद्ध करने) पर शस्त्रों की चमक से समुद्र का जल चमकने लगा ।

## [२] महाराणा गढ़ लक्ष्मणसिंह* का अलाउद्दीन खिलजी से युद्ध

### ( चित्तौड़ का पहला शाका 'महायुद्ध' )

गीत ( छोटा साँणौर )

तेरासे समत बरस अगतीसे, जवन हिंदवां हुवो जुध ।
राणें बात अबीढी राखी, तेरा पीढी झड़ी तद ॥१॥
सूरां–गुर गिड़ लखम सरीखा, अड़सी कुल मंडण आरोड़ ।
आया काम दली दल आतां, चौरासी राजा चितौड़ ॥२॥

दीन-अलाव फरे गढ दोलो, हर सर माल बणाव हुआ ।
सात लाख झड़ खत्री सरारा, मेछ अठारह लाख मुआ ॥३॥
रामायण भारत बिध राणा, तवा समरसी मरण तसो ।
साको कियो अमो लक्खमसी, अवरण साको हुवे असो ॥४॥

( रचयिता:- अज्ञात )

अर्थ:—विक्रम सं० १३३१ में (जब) हिन्दू और मुसलमानों के बीच लड़ाई शुरू हुई (तब), महाराणा ने अपनी बात (टेक) अच्छी तरह रखी; (परन्तु) उस लड़ाई में तेरह राजवंश काम आये (मर मिटे)।

(जिस समय) दिल्लीश्वर की सेना ( चित्तौड़ पर ) चढ़ आई, तो वीर-शिरोमणि महाराणा गढ़ लक्ष्मणसिंह के सुपुत्र श्री अरिसिंह, जो वीरोचित गुणों में पिता के सदृश एवं कुल-भूषण था । अपने वंश सहित और चित्तौड़ दुर्ग पर रहने वाले (अन्य) राजपदधारी चौरासी सामन्त ( लड़ाई में जूझकर ) मर गये ।

जब अलाउद्दीन ने चित्तौड़ दुर्ग को घेर लिया, तब हर (रुद्र) के गले की शोभा मुण्डमालाओं से अधिक बढ़ गई । उस युद्ध में सात लाख सशस्त्र राजपूतों एवं अठारह लाख मुसलमान योद्धाओं का खून हुआ ।

राणा का यह युद्ध 'रामायण' एवं 'महाभारत' में वर्णित युद्ध के समान हुआ। राणा की मृत्यु ( रासो में वर्णित ) रावल समरसी ( समर-विक्रम ) जैसी कही जा सकती है । उस राणा लक्ष्मणसिंह ने यह महायुद्ध ऐसा किया जैसा न तो कभी पहले हुआ और न आगे संभव है ।

---

टिप्पणी:—यह शिशोदिया वंश का अन्तिम राणा था, जो १३६० में चित्तौड़ दुर्ग पर हुई लड़ाई में अलाउद्दीन खिलजी के सैन्य-बल से जूझकर अपने समस्त पुत्रों सहित मरमिटा । इस गीत की उक्त घटना १३३१ में घटित है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं बैठती है ।

[४] अरिसिंह* (प्रथम) का अलाउद्दीन के साथ युद्ध

गीत ( छोटा साणोर )

पह दीन-अलाउल थंड न पैसे,
गहण थियै गैजूह गूड़ै ।
अड़मी तणा चित्रगढ ऊपर,
अगुट पड़ै भूडंड भड़ै ॥१॥
गढ पालटते गोरियां गाहै,
ढाहै अमत बहादुर ठांण ।
लखमसिहोत तणे तन लोहै,
पड़ै न असुर पड़ै पीठाण ॥२॥
आवट सेन थयो साह आलम,
पट हथ पील पठाण पड़ै ।
आडे रांण तणे धड़ ऊभे,
चामरियाल न दुरंग चड़ै (ढै) ॥३॥
रवि रथ पहर थकत हुय रहियां,
नमो नमो चितरंग नरेस ।
जाणे नहीं नाम ससि जड़ियो
पड़ियाँ तो चड़ि(ढि)यो पँडवेस ॥४॥

( रचियता:- अज्ञात )

प्राप्ति स्थान—राजकीय संग्रहालय, जोधपुर ।

टिप्पणी:—यह गढ़ लक्ष्मणसिंह का पुत्र था, जो वि०सं० १३६० में अलाउद्दीन की चढ़ाई के समय अपने पिता और भाइयों सहित युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ ।

अर्थः—जब राणा अरिसिंह चित्तौड़ दुर्ग के संरक्षणार्थ लड़ते २ मस्तक के धड़ से अलग हो जाने पर भी रण स्थली में ( तांडव लीला करते हुए ) करि-समूह को विदलित करने लगा, तो अलाउद्दीन के सैन्यबल की हिम्मत नहीं हुई कि, दुर्ग के निकट आ सके। वह तो चित्तौड़ दुर्ग से दूर ही दूर अपना घेरा डाले रहा।

राणा गढ़ लक्ष्मण, जब क्रुद्ध हो उठा, तब मुसलमान कुचले जाने लगे और योद्धाओं की उछल कूद से हाथियों के मुण्ड ( रणांगण में ) इधर से उधर लुढ़कते दिखाई देने लगे। उस समय गढ़ लक्ष्मण का पुत्र ( अरिसिंह ) मानो लोहकाय बनगया था। उसने कई पठानों को धराशायी कर दिया परन्तु उसका धड़ पृथ्वी पर नहीं गिरा।

राणा अरिसिंह का रुण्ड ( जब ) जोश में आकर शाही सेना के बीच कूद पड़ा, तब पटा धारी हाथी एवं पठान धराशायी होने लगे। जबतक वह धड़ रण में अड़ा रहा, तबतक किसी चँवरधारी* तुर्क की हिम्मत नहीं हुई कि वह चित्तौड़ दुर्ग में पैर रक्खे।

हे! वीर! तुझे धन्य है, जो तेरे युद्ध को देखने के लिये सूर्य भी अपने रथ को एक पहर तक रोके रहा।

हे! चित्तौड़ के अधिपति! तुझे नमस्कार है। तेरा नाम जब तक चन्द्रमा है, तबतक अमर रहेगा; चूंकि तेरे धराशायी होने पर ही बादशाह चित्तौड़ दुर्ग में प्रवेश पा सका।

* टिप्पणीः—चंवरधारी उसे कहते हैं, जिस पर चंवर डुलाये जाते हैं अर्थात् जो राज्य के सम्मानित उच्च पदाधिकारी होते हैं।

## [५] राणा अजयसिंह* का अलाउद्दीन के घेरे को तोड़ कर निकल जाना

गीत (सुपंखरा)

छले रचायो आराण जोस नसा चोल वोल छायो ।
धुनी वीर सुहायो त्रांबाल बाज धीह ।
अलावदीन रां दलां ऊपरा समझायो एम ।
अघायो जनेवां झाट आयौ अजैसीह ॥१॥

मुसल्लां गेलवा जूथ हेलवा पलामी मंमां ।
हूर रंभ सूर जोड़ी मेलवा हुडंड ।
उखेलवा सेनसाह लखमेस-नंद आयो ।
उजेलवा वड़ां कीत भेलवा उडंड ॥२॥

लेण गलां पलांचार रास-दे रमेवा लागा ।
कायरा क्रमेवा लागा फालां मार कीस ॥
लाखां लोग-वाग हल्लां बेवांण भ्रमेवा लागा ।
सेन टल्लां नागरा नमेवा लागा सीस ॥३॥

ज्वाला रीम दुहूँवला अंगां रोम रोम जागी ।
हींदुवां तुरकां वागी महावीर हाक ॥
बेठवा बेवाणा माहे तरक्का मोहया वींद ।
केवाणा जरक्कां जूटा गरक्का कजाक ॥४॥

चालां बांध सूर थाटां जंग वाटां आया चौड़े ।
कोह मांच राण घाटां ललक्कां कराल ॥
विहुँ वलां सामुहां उराटा चढै एम वागी ।
त्रभागां तमंचां तेगां झाटां नराताल ॥५॥

हूर रंभ सूर वरे जाय कैक जोड़ां हांथां ।
बाथां भरे गैण ताजी खड़ै काथा बेग ॥
जिहान राखबा गाथा करे हल्ला हिन्दू जूटे ।
तूटे कै मुसल्लां माथा साथा वार तेग ॥६॥
जोसेलां रतंगां- धाप जेण वेलां भावे जेता ।
आवे तेण हूतां चेता सतंगा ऊमंग ॥
ग्रहे ऊँचा सुराँ चंड कराली खतंगा गावै ।
मतंगा ओयणां काली बजावे मृदंग ॥७॥
असत्रां ससत्रां झीक महा बंकै घाट उड़े ।
जावे आट-पाट-नदी रतां नीर जेम ॥
वरे कै नाह रै जाय रंभ हुर गणे त्राट ।
अजैसी माहरे बागी खागां झाट एम ॥८॥
धरा सेन आवखी झड़ेगी खाग फूलधारां ।
लीधा थक्कां अजैसी रहे जे भड़ां लार ॥
पिता बंधु दाद लौं चौरासी लोह लागा पंड ।
पातसाही घूंदतो पहूँतो पेले पार ॥९॥

(रचयिताः- अज्ञात )

अथः—( जब ) राणा अजयसिंह उत्साह पूर्वक युद्ध की तैयारियां करने लगा, ( तब ) मारे जोश के उसका मुँह तमतमा उठा, रणस्थल में वीर-घोष

* टिप्पणीः—यह राणा गढ़ लक्ष्मणसिंह का छोटा पुत्र था, जो अलाउद्दीन खिलजी की चढ़ाई के समय में वंश-रक्षा के लिये चित्तौड़ के घेरे से निकल कर केलवाड़े में जाकर रहा। महाराष्ट्रीय राज्य-संस्थापक छत्रपति शिवाजी इन्हीं अजयसिंह के वंशधर थे।

होने लगा, रणभेरी जोरों से बजने लगी। इस प्रकार वह सज धज कर अला-उद्दीन की सेना पर टूट पड़ा और उसे शस्त्राघातों से तृप्त ( आहत ) करते हुए आगे बढ़ा।

( उस समय ) वह राणा लक्ष्मणसिंह का पुत्र ( अजयसिंह ), मानो मुसलमानों के समूह को निगलने, मांसाहारिणी गिद्धिनी आदि को मांस की चाट लगाने, हूरा और रंभा की जोड़ी को वीरों से मिलाने, शाही सेना के पैर उखाड़ने, अपने पूर्वजों की कीर्ति को उज्वल बनाये रखने और दुष्टों का संहार करने के लिये चल पड़ा।

( तब ) पलचारो ( गिद्धआदि ) मांस भक्षण करने के लिये देवताओं के समान रास खेलने लगे, कायर, बन्दरों की तरह भागने लगे, लाखों मनुष्य शोरगुल मचाने लगे, आकाश में विमान चक्कर काटने लगे और सेना के प्रयाण से धक्का खाकर शेषनाग के फण लचकने लगे।

दोनों दलों के अंग २ और राम २ से क्रोधाग्नि भभक उठी। हिन्दु और तुर्क योद्धाओं की हुँकार गूंजने लगी। मृतवीर हर्षित होते हुए अप्सराओं का वरण करने के लिये दुल्हे बन २ कर विमानों में बैठते समय शोभा पाने लगे। कितने ही योद्धा शस्त्रवर्षा करते हुए भिड़ गये और गहरे घावों से छक गये।

दोनों दल के वीर-समूह युद्ध मार्ग पर पंक्ति बद्ध होकर आ जमे और और भीषण हुंकार करते हुए आमने सामने आकर एक दूसरे की छाती पर चढ़ बैठे। उस समय भालों, तमंचों व तलवारों के वार अंधाधुन्द होने लगे।

( वहां ) कितने ही शूरवीर, हूरों एवं रम्भाओं को वरने के लिये उनके हाथ पकड़ २ कर विदा होने लगे। 'ताजी'—जाति के घोड़े द्रुत वेग से दौड़ते हुए ( मानो ) व्योम को बाहुपाश में भरने लगे। इस प्रकार पृथ्वी पर अपनी प्रसिद्धि कायम रखने के लिए आक्रमण करते हुए हिन्दू वीर जूझ पड़े जिनके खड्गाघात के साथ ही कई मुसलमानों के मस्तक कट २ कर ( भूमि पर ) गिरने लगे। मद भरी आंखों वाली महाकाली रण-चण्डी अपनी रुचि के

अनुसार उन्नद्ध वीरों का रक्त-पान करती हुई जाग उठी और ऊँचे स्वर से घावों से भरे वीरों के प्रशंसात्मक गीत गाती हुई मृदङ्ग बजाने लगी।

( वहां ) शस्त्रों की भीषण वृष्टि से रक्त-धारा बह निकली, मानो नदी ( बाढ़ आने पर ) किनारों से बाहर बहने लग गई हो! वरण किये हुए ( मृत ) सिंह-रूपी वीरों के साथ हूरें एवं अप्सरायें भी आकाश-मार्ग की ओर चली। इस प्रकार राणा अजयसिंह और अलाउद्दीन खिलजी के बीच शस्त्र-युद्ध हुआ।

चिनगारियां बरसती हुई शस्त्र-धाराओं से समस्त सेना कट गई, तब चौरासी घावों से पूर्ण ( राणा अजयसिंह ) बचे खुचे सैनिकों को साथ लेकर मृत पिता एवं बन्धुओं की आत्मा से—आशीर्वाद प्राप्त कर शाही सेना को कुचलता हुआ रणस्थली से पार हुआ।

## [६] महाराणा हम्मीरसिंह* ( प्रथम ) की उदारता

गीत ( छोटा साणोर )

हरिहर तणा हमीर नरेसुर,
लाभ थका मूका रह लोय।
एकण आस तूहाड़ी ऊपर,
सीसोदा आवे सह कोय ॥१॥

जटधारी धारी जानोई,
कविता—धारी कंथाधार।
मारग दस मेवाड़ नरेसुर,
वहै तुहाळै बड़ दातार ॥२॥

* टिप्पणी:—यह गढ़ लक्ष्मणसिंह का पौत्र एवं अरिसिंह का पुत्र था। इसने बल पूर्वक मुसलमानों से लड़ कर चित्तौड़ को पुनः अधिकृत किया था। यह बड़ा दानी महाराजा था। इसकी मृत्यु वि० सं० १४२१ में हुई थी।

हर पँथ अधहर पँथ अहे हुय,
प्रभा हुवन्ती ममोप्रवाह ।
एक हमीर वहै कांकणियै,
आज तुहालूं उतलू तियाह ॥३॥
उहव थयांनां कोई वह आवे,
सुरियण मारग अन्य मह ।
मेक वहै अरमीह ममोभ्रम,
प्रथी बिलग्गी तूझ पह ॥४॥

( रचयिता :—अज्ञात )

अर्थः—हे हरि-हर के अंशधारी शिशोदिया राणा हम्मीर ( प्रथम ) ! ( केवल ) एक तुम्हारी आशा पर ही सब कोई अपनी ( कुछ न कुछ ) पाने की लालसा को मूक बन कर छिपाते हुए तुम्हारे पास आते हैं, ( क्योंकि तुम ही एक ऐसे हो, जो मनुष्यों की स्वतः इच्छा पूर्ति कर सकते हो ! ) ।

हे दानवीर मेवाड़-अधिपति ! तुम्हारे ( राज्य की ) दसों दिशाओं के रास्तों पर जटाधारी ( साधु ), जनेऊधारी ( ब्राह्मण ), कविता-धारी ( कवि ) और कंथा-धारी ( सन्यासी ) आते रहते हैं । (भीड़ लगी रहती है) ।

हे राणा हंमीर ! तुम्हारे समान कोई त्यागी नहीं है । तुम्हारे ( राज्य के ) वन-प्रान्तों में अनेक शिवमार्गी एवं अघोरी महात्मा घूमा करते हैं, जिनकी तपःक्रांति ( गंगा के ) प्रवाह की तरह ( निर्मल ) है ।

स्वर्ग में उत्सव मनाने पर भी उस ओर कोई नहीं पैर रखता । हे अरिसिंह के तुल्य राणा हंमीर ! वह तो सब के सब एक तेरी आशा में लगे हुए हैं ( समूह के समूह तेरे पास दौड़े आते हैं । स्वर्ग की ओर कोई भी नहीं जाता ) ।

## [७] महाराणा क्षेत्रसिंह* का मालवा के बादशाह के साथ युद्ध

गीत ( छोटा साणौर )

ओडण पुड़ येक येक पुड़ असमर,
हाते मूंठज हातलिया ।
कोप खुधारथ कै तल़ काठा,
दांणव भांत नबी दलि़या ॥१॥

धर धृजवी धरा पुड़ धुवतै,
घरट घाय घण घेर विया ।
रात मुखा गोहूँ अर राणै,
आवध धारे ओरविया ॥२॥

अणियां धार अनेक आवरत,
पाड़े मूंठज पाण गया ।
खड़ग पखाण खेड़ते खेता,
थाट र वद रण लोट थया ॥३॥

पड़ पकवान प्रवाड़ा प्रमरथ,
माहा सेन करे बोह भंग ।
मैंदा कटक महारस ममलै,
जीम्हण राण कियो रण जंग ॥४॥

( रचयिता:-अज्ञात )

*टिप्पणी:—यह हम्मीर ( प्रथम ) का पुत्र था । इसने वि० सं० १४२१ से १४३६ तक मेवाड़ पर राज्य किया है । मालवा के सुलतान अमीर खां ( दिलावर खां ) गोरी से इसका युद्ध हुआ ।

अर्थः—भूखे राणा खेत्रसिंह ने मानो ( अपनी भूख बुझाने के लिए ) ढाल को तो चक्की का ऊपरी एवं तलवार को दूसरा ( नीचे का पाट बनाया तथा ( तलवार की ) मूठ को चक्की का हत्था बनाकर, अपने क्रोध को चक्की का थाला समझते हुए अन्न के कणों की तरह मुसलमानों को पीस डाला।

चक्की के दोनों पाटों ( ढाल तथा तलवार ) को जब उसने घुमाना शुरू किया, तो समूची पृथ्वी थर्थरा उठी। ( वहां ) ढाल और तलवार की टक्कर से उत्पन्न खनखनाहट घट्टी का 'घर्-घर्' शब्द बन गई थी। महाराणा ( खेत्रसिंह ) ने उस ( तलवार-ढाल की ) चक्की में रक्तिम मुख वाले मुसलमानों को लाल गेहूं की तरह, डाल कर शस्त्र-धार के द्वारा पीस डाला।

हे राणा खेत्रसिंह! तूने तो अपने ( इन तलवार और ढाल रूपी ) पत्थर के पाटों के बीच ( धान्य कणों की तरह ) यवनों को अविराम गति से डाल कर पीस डाले हैं। ( देख,—तब ही तो )—युद्ध-स्थल (घट्टी के थाले) में मुसलमान योद्धा लुढ़क रहे हैं ( पिस २ कर इकट्ठे हो रहे हैं )।

( इस प्रकार ) हे राणा खेत्रसिंह! तूने परमार्थ ( यश-धन ) को इकट्ठा करते हुए जय-गीत गवाकर, शाही सेना का सत्यानाश करके उसे पकवान का रूप दिया है। इस भोज ( खाद्य-सामग्री ) को बनाने के लिए तूने ( शाही ) सेना को मेघ बना कर उसे रुधिर-जल से भिगोकर मसल दिया है।

## [८] महाराणा लाखा* का आतंक

गीत ( छोटा साणोर )

पयदल नह पार सँख्या नह माहण,
कटक पयाणां रंभ किये।

*टिप्पणी:—यह महाराणा खेत्रसिंह का पुत्र था, जो वि० सं० १४३६ से १४७१ से पूर्व तक मेवाड़ का राजा रहा। इसने कई युद्धों में विजय प्राप्त कर मेवाड़ को समृद्धि शाली बनाया।

मात करसी दूजा मंडली का,
लाखो लियते लंक लिये ॥१॥
खोहण कटक मिले खेतावत,
साकुर सुभट इसे ममदाव ।
लागण हार होय तो लेवै,
राकस रध मेवाडो राव ॥२॥
हैदल कलल पायदल हूंकल,
सीसोदै खड़ते सैंनह ।
गढ़ कंहो बीजां गढ़पतियां,
गँजै अगँजी त्रिकुट गढ ॥३॥

अर्थ:— ( रचयिता:—अज्ञात )

महाराणा लाखा की पैदल एवं अश्वारोही सेना का पार नहीं है। इसकी सेना (युद्ध के लिये जब) प्रयाण करती है, तब अप्सरायें भी युद्ध देखने के लिये उमड़ पड़ती हैं। (लाखा में इतना बल है कि) दूसरे मंडलीक राजाओं को परास्त करना तो ठीक, किन्तु यह चाहे, तो (सहज ही) लंका के दुर्ग पर भी अपना अधिकार जमा सकता है।

राणा खेत्रसिंह के पुत्र (लाखा) की अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होती है। जिसमें ऐसे २ सुभट एवं घोड़े हैं कि यदि महाराणा लाखा चाहे, तो इस सैन्य-बल से लंका-स्थित रावण की संपत्ति पर भी अपना अधिकार जमा सकता है।

यह शिशोदिया राणा जब सावधान होकर प्रयाण करता है, तो अश्वारोही सेना में हिनहिनाहट और पैदल सेना में हूँकार उठने लगती है। इस (राणा) के सामने दूसरे राजाओं की तो बात ही क्या ? यदि यह चाहे, तो समुद्र स्थित त्रिकूट पर्वत पर बने हुए लंका के अविजेय दुर्ग को भी अपने अधीन कर सकता है।

## [६] महाराणा मोकल* का प्रभाव

गीत ( छोटा साणोर )

रणजीत कटक कै ऊपर राणा,
वाजंते के उपर वल्या ।
धर धरपती छत्रपत धजपत,
मोकल पावां आय मल्या ॥१॥
लेवा कै थानक लाखावत,
घण समदाये सेन घणा ।
चलणां तलक तुहालूं चौहट,
मोकल् मह मँडलीक तणा ॥२॥
अन अन–खंड तणां मह अधपत,
खलूजे खपिया तूझ खग ।
माथो जिये नमायो मोकल्,
पाट बैसते ससा पग ॥३॥

(रचयिता:- अज्ञात)

अर्थ:—

हे महाराणा मोकल ! (कह तो) —तेरी यह रण-जीतने वाली सेना किस राजा पर चढ़ाई कर रही है और यह रण–नक्कारे क्यों बजाये जा रहे हैं ? क्योंकि, पृथ्वी पर जितने भी भूपति, छत्रपति और ध्वजधारी हैं. वे सब तो पहले से ही तेरे पैरों में आ पड़े हैं (शरण चाह रहे हैं)।

---

*टिप्पणी — यह महाराणा लाखा का सबसे छोटा पुत्र था. इसकी माता मंडोवर के राव चुंडा की पुत्री हंसाबाई थी। यह वि० सं० १४७८ के करीब राजगद्दी पर बैठा। इसकी मृत्यु १४९० के करीब राणा क्षेत्रसिंह के दासी-पुत्र चाचा "मेरा" के हाथों बगार स्थान पर हुई।

हे राणा लाखा के पुत्र ! (अब और कौन से) स्थान (राज्य) पर अधिकार पाना शेष है जो तुम इतना बड़ा वीर-समुदाय और लम्बी चोड़ी सेना को सजा रहे हो ? क्यों कि, जितने भी मंडलीक राजा-गण हैं, उनके ललाट–तिलक तो तेरे यहां देहली पर मस्तक टिकाने (प्रणाम करने) से उड़ चुके हैं, अर्थात् सभी राजा तेरे आगे झुकते हैं, अब तू किस पर विजय पाने को चढ़ाई कर रहा है ?

अन्य भूखंड के जितने भी राजा, शत्रु थे. उन्हें, तो तेरी तलवार ने नष्ट कर दिया है। हे राणा मोकल ! (अब तो) वे ही मस्तक धड़ पर टिके हुए हैं, जो तेरे राज्य-सिंहासनासीन होते ही (तेरे) चरणों में झुक चुके हैं।

## [१०] महाराणा मोकल का आतंक

(गीत)

ईखे देलड़ी नामपुर नासे, भटनेरो भड़वायो।
कलमां कालव ग्रहणे कोटां, ईखे मोकल आयो ॥१॥
मेवट कोटे राय मेलणो, माहण सेन सवायो।
लोदां तार कहै लाखावत, ऊगौ दीहत आयो ॥२॥
संभर समत डंडे डिडवाणो, भटनर पड़े भगाणा।
राणा तूझ भये रेंयांणा, थर हरिया सह थाणा ॥३॥

(रचयिता:– अज्ञात)

जब वह यवनों का कालरूपी राणा (मोकल) दुर्गों पर अधिकार करने बढ़ा, तब उसे देखकर दिल्ली, नागोर और भटनेर आदि स्थानों के निवासी भयभीत हो भागने लगे और कहने लगे कि, महाराणा मोकल आ पहुँचा है।

अधिक अश्वारोही सेना को लेकर जब राणा मोकल ने मेरवाड़े को दबोच लिया, तब उसके आतंक से लोदियों को ताड़ना देने वाले (सैयद

मुसलमान) प्रति दिन उठते बैठते (चौंककर) कह उठते हैं कि, (अरे !) वह राणा लाखा का वंशज (मोकल) आगया है !

(जब) सशस्त्र वीर (राणा मोकल) ने सांभर और डीडवाना (स्थान--विशेष) को दंडित किया (खदेड़ा), तो भटनेर की प्रजा उसके समक्ष टिकी नहीं (भाग खड़ी हुई)। (इसी प्रकार) राणा मोकल के क्रोध करने पर समूचे शाही थाने थर्रा गये।

## [११] महाराणा मोकल की उदारता

गीत (छोटा साणौर)

जाइ आवै राइ अनेरां जो अतां, बींजे कहै न रहै बलि।
रेण अचल मोकलसी राणौ, सांसण आपे करे मलि ॥१॥
जाए घर हेका जीवंतां, पहड़े हेकां प्रत पर जाइ।
आपि अचल रोपे आगा हट, रेणवां की मेवाड़े राइ ॥२॥
अण दूयगां राइय अनिकारां, एकणि खणि थाय अलगि।
मोकल जिम मेयणि मागंतां, जिके दिये त्यांज रुजगि ॥३॥
त्यागियां तिलक त्यागदे त्रिहुवणि, काजि सुजस वावरे कर।
लीधौ कीय भलो [illegible], ते धूतारी–तणौ–धर ॥४॥

(रचयिता:– अज्ञात)

अर्थ:—

कवि-गण अन्य राजाओं के पास (भी) जाते हैं, परन्तु वहाँपर भेद भाव देखकर वे नहीं टिकते हैं। राणा मोकल (तो) रत्नाचल के समान है, जो (भेदभाव नहीं रखते हैं और) सम्मान पूर्वक दान में ग्राम दे देते हैं।

(भूमिदान सभी करते हैं, परन्तु) कोई तो देकर जीते जी उससे छीन लेता है, कोई उसके मरने पर हड़प कर लेता है; परन्तु यह मेवाड़--अधिपति (राणा मोकल) कवियों को भूमि–दान इस प्रकार करते हैं जो पुश्त दर पुश्त तक वापस नहीं ली जाती।

कई कंजूस राजा या तो, (दान देने से) इनकार ही कर देते हैं अथवा (देकर) कुछ ही दिनों में विभिन्न रूप धारण करते हैं (देने से नाहीं कर देते अथवा देकर कुछ ही दिनों में लौटा लेते हैं) किन्तु महाराणा मोकल कविगण के मांगने पर जो भूमि देता है, वह पुश्त दर पुश्त तक जीविका का साधन रहती है।

हे त्याग-कर्ताओं के तिलक राणा लाखा के पुत्र ! तू शिव-स्वरूप है। केवल तू ही यश के लिये अपने हाथ उठा कर तीन प्रकार का त्याग (संकल्प-युक्त, असंकल्प-युक्त और वाच्य रुपमें त्रिविध दान) करता रहता है (अथवा ब्राह्मण, राव, चारण इन तीनों को दान दिया करता है)।

## (१२) महाराणा मोकल की धोखे से मृत्यु

गीत ( छोटा साणोर )

अत वासुर चूक होये मोकलसी,
घात लगे पहड़ियो घर ।
कविजण तिण दालीद काढ़ियो,
काढ़ी सुजली तेण कर ॥१॥
मोकल मिरण नमो माटी पण,
रे ह न लाँगी न लागी रज ।
धुर जिण दान समपिया धूना,
धरी जड़ाली तेण धज ॥२॥
मोकल मरण महा व्रव मलियो,
अंग अहँकार दिखाले आथ ।
जल हलती काढ़ी, जल हलते,
हामू हरे कटारी हाथ ॥३॥

फिटकार तां फुरलतो फौजां,
राणा अहाड़ो रूक रस ।
लागो लोह पछां लाखावत,
अणियाली ऊथलं अस ॥४॥

( रचयिता:– अज्ञात )

अर्थ— हे राणा मोकल ! तेरी मृत्यु धोखे से हुई । दुष्ट चाचा ( मेरा ) द्वारा ( शस्त्र का ) घाव लग जाने पर भी मकान से बाहर निकल, जिन हाथों से कवियों का दारिद्र्य दूर करता था, उन्हीं हाथों से दुश्मन पर कटार खींचली ।

मोकल की वीरोचित मृत्यु प्रशसनीय है । वह वीरता की लीक से च्युत नहीं हुआ । उसने अपने ऊपर ( किसी तरह का ) कलंक नहीं लगने दिया । जो राणा भली प्रकार भूमि-दान करता रहा, उसने आखिरी समय में कटारी पकड़ी ।

हमीर-वंशज मोकल की मृत्यु महापर्व ( पुण्य तिथि ) को हुई । उसने आखिरी समय तक ( भी ) क्रोध दिखलाते हुए—चमकती हुई कटार निकाल कर हाथ में लेली ।

तलवार के रंग में रंग कर आहड़ा राणा ( लाखा-पुत्र मोकल ) शत्रु-सेना को ( युद्ध में ) बिखेर देता था, ( उसीने आज अखीर समय में भी ) शत्रु-द्वारा लोह-प्रहार से आहत होकर अपनी सुतीक्ष्ण कटारी से शत्रु के घोड़े को मार कर गिरा दिया ।

## (१३) महाराणा कुम्भा * द्वारा गो-रक्षा एवं यवन-संहार

गीत ( छोटा साणोर )

अत करती सोच पहर अठ्ठांई, तूँ आगे नहँ चरत तणा ।
प्रमभ्रम सब ब्रह्म ऊँ पूछे, गऊ कुमी ही कसे घणा ॥ १ ॥

लंछ पर सहत अछंबे लागी, सुर तैंतीसूं कोड़ सह ।
सुख कण भाँत तने सांप जियो, कपला साँची वात कह ॥ २ ॥
मेटे दुख गायां सुख मेलो, पांडीसां पा छट त्रहुँ पोर ।
कलमां तणां घणां दल कूम्भे, नागद्रहे गलिया नागोर ॥ ३ ॥
सह सुण वात दई सैवासी, व्हा राजी देवत जण वार ।
मोकल सुत मेटे मेछाणो, आहाड़े कीदो उपगार ॥ ३ ॥

( रचयिताः– अज्ञात )

अर्थः– विष्णु, शिव और ब्रह्मा ( कामधेनु से ) पूछते हैं कि हे काम धेनु ! तू पहले तो आठों पहर बहुत ही चिंतित रहती थी ( यहाँ तक कि ) घास भी नहीं चरती थी; परन्तु अब इतनी अधिक प्रसन्न क्यों है ?

परियों सहित लक्ष्मी और तैंतीस करोड़ देवता भी चकित होकर पूछते हैं कि, हे कपिले ! ( कामधेनु ! ) यह ठीक २ बताओ—तुम्हें इतना सुख कैसे हुआ ?

उत्तर में कामधेनु बोलीः—राणा कुम्भा ने तीन पहर तक तलवार चला कर गौओं का दुःख मिटाया और उन्हें सुखी किया । नागद्रह-अधिपति राणा कुम्भा ने नागोर में मुसलमानों के बड़े २ दलों को नष्ट कर दिया ।

उस समय देवताओं ने उसकी सारी बातें सुनी और प्रसन्न होकर धन्य-वाद देते हुए यही कहा कि, मोकल-पुत्र कुम्भा ने म्लेच्छों का नाश कर बड़ा उपकार किया है ।

❀ टिप्पणीः—यह महाराणा मोकल का पुत्र था । इसने वि० सं० १४९० से १५२५ तक मेवाड़ पर राज्य किया । अपने समय का यह बड़ा विद्वान, शिल्प-शास्त्र का प्रेमी और वीर था । इसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त कर मेवाड़ का गौरव बढ़ाया । स्वयं कवि और कला प्रेमी था ।

## [१४(क)] अजेय राणा कुम्भा

(गीत)

धड़ भड़ नाचिया धारा छंद ढोइ ढोइ,
परपंच मौह दाख विया प्राण ।
कुम्भलमेर न दीन्हो कूम्भै,
सेवा खेपं गयौ सुरताण ॥१॥
सरबस लेयण नरिंदां सिंगलां,
सयल कला जाणै सुरताण ।
गढ कारणि गहिलोत राइ गुर,
एक रीझवे न सकियो राण ॥२॥
खिलची त्रिषभ घात सहि खेली,
वाजित्र सिगलै रहीआ वाह ।
दुरंग न दीधो राउ दस-सहसे,
पात्र गयौ ठाला पतसाह ॥३॥
आंग्रहि मांगियां कोट न आलियां,
इणि परि राण थयौ अदतार ।
मेवाड़ै ठाला मोकलियौ,
महमँद जेहुवौ मांगण हार ॥४॥
अरि सि ढोइ जेतला आया,
गोरियां तेता भागा गात्र ।
खीजे गयो खजाना खाए,
गज-पति सारीखौ गज-पात्र ॥५॥

( रचयिताः- खेंगार महडू )

अर्थ—सुलतान के छद्म युद्ध छेड़ देने पर तलवार से कट २ कर वीरों के रुण्ड ( रणक्षेत्र में ) नृत्य करते हुए लुढ़कने लगे। यद्यपि शाह ने अपनी समूची सेना नष्ट करा दी; फिर भी राणा कुम्भा ने अपने कुम्भलमेर दुर्ग पर उसका अधिकार नहीं होने दिया।

बादशाह समस्त राजाओं का सर्वस्व छीनने में कुशल था और राजाओं को प्रसन्न करके उनके दुर्गों पर अधिकार कर लेता था; परन्तु गुहिलोत वंश के मुखिया ( कुम्भा ) को वह प्रसन्न नहीं कर सका।

खिलजी वंश के सुलतान ने ( जो भी — विषम दाँव चलाया ( विकट हमला किया ) और रण-वाद्य बजवाये; फिर भी दस हजार गाँवों ( मेवाड़ ) के अधिपति राजा ने अपने दुर्ग पर अधिकार नहीं होने दिया और उस फकीर रूपी बादशाह को रीते खप्पर ही लौटना पड़ा।

याचकों की तरह घेर कर महमूद ने दुर्ग की याचना की परन्तु महादानी होते हुए भी राणा कुम्भा ने इस विषय में कृपणता ही प्रकट की और उसे सूने हाथ लौट जाना पड़ा।

जितने भी गोरी वंश के यवन ( दुर्ग के लिये ) चढ़ २ कर आये, उन्हें काट २ कर धराशायी कर दिया। यद्यपि गजारोही कुम्भा के समान ही वह सुलतान भी गजारोही था, फिर भी बहुत-सा धन खर्च कर युद्ध करता हुआ कुम्भा से पराजित होकर लौट गया।

## [१४(ख)] महाराणा कुम्भा की अपने पुत्र उदयसिंह द्वारा मृत्यु

गीत ( छोटा साणोर )

कलह हवा चूक होयते कुम्भा,
जगत तणा धुर दुरँग जुल।
काढ़ा इचरज किसो कटारी,
काढ़िया जेण पेंतीस कुल ॥१॥

ममन विमंम ममर सुरताणां,
राणा अहाड़ो चड़े (ढ़े) रिण ।
बांकस किम घाते वाढ़ाली,
जग त्रोय पाधरिया जिण ॥२॥

सुजली—मोकल् गाह ममोभ्रम,
ग्रहे दुरँग गिर नवे—ग्रह ।
बेनड़िया जिण किम वीमारे,
प्रिथमी नव खंड तणा पह ॥३॥

करतो नहीं राण कुम्भक्रन,
जंतूँ बलवंत आप जिम ।
मानव देव दइत न मानत
कलह कटारी तणा क्रम ॥४॥

( रचयिता:— अज्ञात )

अर्थ—मनुष्य को इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि, जिस राणा कुम्भा ने अपने कुल के सहित क्षत्रियों के ( अन्य ) पेंतीस वंशों को ( आपत्ति से ) उबारा, उस पर उसके पुत्र ने कटार कैसे निकाली होगी ? ( हे राणा कुम्भा ! ) तेरे इस कलह पूर्ण धोखे से निधन हो जाने पर संसार में जितने भी बड़े २ दुर्ग हैं, वे रो रहे हैं ।

जो आहड़ा राणा ( कुम्भा ) युद्ध-काल में चढ़ाई करके बादशाहों के विषम ( विकट ) युद्धों को ( भी ) ठंडा कर देता था और जो तीनों भुवनों को सीधे पथ पर चलाया करता था, उस पर बाँकी कटार का प्रहार कैसे हुआ ?

जो राणा मोकल के पराक्रम को धारण करने वाले ( मोकल-पुत्र राणा कुम्भा ) शाहों से बराबरी करते थे और पर्वतों पर बने हुए दुर्गों को छीन लिया करते थे ( यह तो सब ठीक; किन्तु ); जिनके सामने नवग्रह भी झुकते थे, उनका निधन हो जाने पर नवों खण्डों के राजा उन्हें कैसे भुला सकते हैं ? ( उनका यश अमर है )।

हे पराक्रमी राणा कुम्भा ! अगर तू अपने पिता ( मोकल ) की तरह अकाल मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ होता, तो मनुष्य, देव और दानव यह कभी सत्य नहीं मानते कि, कलह भी कोई भयंकर आफ़त है, जिस कारण ( पुत्र द्वारा पिता पर भी ) कटार का प्रहार हुआ ।

## (१५) राणा रायमल * का खेराबाद के पास बनास नदी—तट पर मालवा के बादशाह से युद्ध

गीत ( बड़ा साणौर )

चढ़े पूर पावस पखे रायमल रिण चढ़े, नवो भाराथ में दीठ नयणा ।
बहे बनास कांय आज राते वरण, जल् अधक पूछियो गंग जमणा ॥१॥

कोड़—भड़—कचरिया रायमल् कलहते, जुड़ण मोटा करे कुम्भ जायो ।
रलतल् रुहिर रिण ढांण रहियो नहीं, ऊपटे नदी जल् माहिं आयो ॥२॥

घाय मारां हुवे खेद हिंदू घणा, मूफ उपकण्ठ सगरांम मातो ।
केलपुर साभिया तणा दल् काबलो, रुहिर घण मले तिण नीर रातो ॥३॥

*टिप्पणी:—यह महाराणा कुम्भा का छोटा पुत्र था । यह वि० सं० १५३० में पितृ घातक अपने बड़े भाई उदय को पराजित कर मेवाड़ का स्वामी बना । मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन के सेनापति जफरखां का जब मेवाड़ पर आक्रमण हुआ, तब खेराबाद के पास इसने सुल्तान की सेना से युद्ध किया ।

धाड़ मेवाड़ पोहो जीत मालव धणी, भांजिया रायमल उसर साराज ।
सार धारां रंगी धरा सीसोदिये, ऊजला नीर राता वहे आज ॥४॥

( रचयिताः—अज्ञात )

अर्थः—यमुना और गंगा, बनास नदी से पूछने लगी कि, ( कहो बनास ! ) आज तुम कैसे इतनी अधिक लाल रक्त के पानी से भरी हुई बह रही हो ? उत्तर में बनास ने कहा—राणा रायमल ने जो पूर्ण रूप से पावस ऋतु की तरह चढ़ाई की है तथा जो यह युद्ध ( मानों ) नये महाभारत की तरह हुआ है, उसे मैंने अपनी आंखों से देखा है।

राणा कुम्भा के पुत्र रायमल ने ( जब ) शत्रुओं से भारी टक्कर ली और दुश्मन को रणस्थली में कुचल दिया, ( तब ) दुश्मन का रक्त धरा पर बह निकला ( यहां तक कि वह खून ) जब युद्ध-क्षेत्र में भी न समा सका तो, उसका प्रवाह मेरे जल में आ मिला। (यही कारण है कि मेरा पानी लाल रक्त का और अधिक है )।

मेरे समीप ही वह ( रायमल ) युद्ध में मतवाला होगया, जिससे कई हिन्दू व मुसलमान योद्धा घावों से छक गये। इस प्रकार केलपुर-अधिपति ( मेवाड़ राणा ) और काबुली ( मुसलमान ) के सैन्यबल की तयारी से अधिक रक्त मुझमें आ मिला है तथा इसी कारण मेरा जल लाल रक्त का होगया है।

मेवाड़-अधिपति की सेना ने मालवेश पर विजय पाई। इस युद्ध में शिशोदिया राणा रायमल ने लोह चलाकर समस्त शत्रुओं का खून कर दिया, जिससे ( समूची ) पृथ्वी रक्त-रंजित होगई और यही कारण है कि, मेरा उज्वल जल आज लाल रंग का होकर बह रहा है।

## (१६) राणा रायमल की महानता

गीत ( छोटा साणौर )

कर घाते मूंछ केलपुर केण सिर, ठाकुर बीजाबाद ठरे ।
राजकुली पेंतीस रायमल, करवा ओलग मेल करे ॥१॥

कनक तुला डँडले कुम्भावत, रायांमाल न कीजे रीस ।
सोहो मंडल मेवाड़ नरेसर, पांय बिलागा कुल पेंतीस ॥२॥
बल परहर बित बिना बोलता, सेन सहत धर राखी सूत ।
राणा तुहाली पोल रायमल, राजधणी सेवे रजपूत ॥३॥

( रचयिता:-अज्ञात )

अर्थ:—हे केलपुर-अधिपति ( मेवाड़-राणा ) रायमल ! तू किसलिये मूछों पर ताव देरहा है ? क्योंकि, जितने भी अन्य भूपति हैं, वे सब ( तो ) तुझसे युद्ध-वाद ( लड़ाई-झगड़ा ) करने से कांपते हैं और ( गुहिलोत वंश के अतिरिक्त ) पैंतीस ही राजवंशी क्षत्रिय तुझसे संधि करने को उद्यत रहते हैं ?

हे राणा कुम्भा के पुत्र रायमल ! तुम ( इस प्रकार ) दूसरों से सोना तुलवा २ कर ( दण्ड में लेकर ) क्रोध मत दिखलाओ; क्योंकि, जितने भी दूसरे पैंतीस कुल के मण्डलेश्वर हैं, वे सब तेरे चरण छू रहे हैं ।

हे राणा रायमल ! जितने भी राज्यों के स्वामी हैं, वे सब ( तो ) शारीरिक शक्ति के अतिरिक्त, कोष-शक्ति, सैन्य-शक्ति तथा भू-शक्ति को सोती ( पड़ा ) रखकर चुपचाप तेरे द्वार पर सेवा कर रहे हैं, ( इसलिए अब तू किस पर मूछें तान रहा है ? ) ।

## [१७] महाराणा रायमल के कुँवर पृथ्वीराज* (उड़ना) द्वारा लल्ला पठान की मृत्यु

गीत ( छोटा साणोर )

तुड़ि चड़े प्रिथिमलि भांजे तोडौ, लला तणो वप विहँडे लोहि ।
त्राए पाई नली जिम वाजै, मृग मणिधर तिणि आवै मोहि ॥१॥
कुँभा-हरे डल खल कीधा, मंडल वै जम तास मुणे ।
पवनि झटाकै नली वंस परि, सारँग सरप सु नाद सुणे ॥२॥

माल संभ्रम रहचे मीर बच्चा, करये जुअल विखंड किया ।
अनल भिरणि वाजता आवी, हरिण भुयंगम दिये हिया ॥३॥
किलबां चरण करग काचरिया, सीसोंदे नर भर समर ।
कुरँग उरँग राता तिणि कारणि, हाड बाजते नाद हर ॥४॥

( रचयिताः-टोडरमल छांछड़ा )

अर्थः—घोड़े पर चढ़कर कुमार पृथ्वीराज ने ( जब ) 'टोडे' नगर का ध्वंस कर दिया और लल्ला पठान के शरीर को शस्त्र से काट दिया, ( तब ) उस ( पठान ) के ग्रीवा-रंध्र से श्वास के निकलने पर ज्योंही वह ( ग्रीवा ) बजने लगी, वैसे ही मोहित हो २ कर हरिण और मणिधर सर्प उसके पास दौड़ २ कर आने लगे ।

( जब ) राणा कुम्भा के वंशज ने दुष्ट और उसके साथियों को नष्ट कर दिये ( तब ) उसका यशोगान सब मण्डलेश्वर करने लगे । शत्रु-ग्रीवा की नली श्वास से बजने लगी, जिसके शब्द को हरिण तथा सांप सुनने लगे ।

सब के सब मीर-वंशज उस समय भ्रम में पड़ गये, जब रायमल की भ्रांति देने वाले युवराज ( पृथ्वीराज ) ने कृपाण से दुश्मन के टुकड़े २ कर दिये और शत्रु की श्वास-नली बजने लगी, जिसे सुनकर हरिण और भुजङ्ग मुग्ध हो २ कर ( उस नाद पर ) अपना हृदय समर्पित करने लगे ।

( जब ) शिशोदिया-वीर ( पृथ्वीराज ) ने कलमें पढ़ने वाले मुसलमानों को चरणों एवं खड्गों से युद्ध में कुचल दिया, ( तब ) उनके कण्ठों की श्वास-नली का स्वर सुनकर मुग्ध मन हरिण और सांप उसकी ओर अनुरक्त-से दिखाई देने लगे ।

---

❀ टिप्पणीः—यह महाराणा रायमल का बड़ा पुत्र था, जो पिता के जिन्दा रहते हुए ही मर गया । वीरता के साथ २ आतुर प्रकृति होने से राजस्थान में यह 'उड़ना पृथ्वीराज' के नाम से प्रसिद्ध है । इसने टोडा के सुल्तान सोलंकी को राज्य दिलाने के सम्बन्ध में लल्ला पठान को मार गिराया । राव जगमाल देवड़ा द्वारा विष मिश्रित लड्डू खिलाने से मृत्यु प्रसिद्ध है ।

## [१८] महाराणा साँगा का* मुगलों पर आतंक

गीत ( छोटा साणौर )

रढ़ चढ़े संग्रामि फेरिया रेंवत दीसे नहींस जेथी दिनि ।
बाबर सारीखा बिरदेता, बैरी गया अँधार बनि ॥१॥
खत्र हेमर खड़िया खूमाणे, सुजड़ि भुजादंड सूरत साहि ।
सूर न सूझे भोम सांघणी, मुगल गयो ते वन खाँड मांहि ॥२॥
छाँटा चीतोड़ा असि छूटा, किरण न सूझे रयण कलि ।
असपति सांगण रे ओद्राये, वीझ गयो तो वाग वलि ॥३॥
अँत ऽगे खड़िया असी ऊन्हा, कीधो सांगण राणे कोप ।
दणियर सूझे नहीं जिणी दिसि, असुर अँधारे रहे अलोप ॥४॥

( रचयिताः—अज्ञात )

अर्थः - हठ करके ( जब ) राणा सांगा ने अपनी अश्वारोही सेना आगे बढ़ाई, ( तब ) उस घन-घटा के समान सेना के कारण दिन के रहते हुए भी कुछ नहीं दिखाई देने लगा। उस अंधेरे वन में बाबर जैसा कीर्तिमान् दृढ़प्रतिज्ञ शत्रु भी छिप गया।

उस युद्ध-रत खुमाण—वंशज ( सांगा ) ने ( जब ) हाथ में खड्ग लेकर राजपूतों एवं घोड़ों को द्रुत गति से आगे किया ( तब ) सेना की ओट से सूर्य भी नहीं दिखाई देने लगा। पृथ्वी भी उनके पैर बढ़ने पर संकुचित होती-सी जान पड़ती थी। ऐसे अश्व-समूह-रूपी सघन वन में मुगल-शत्रु ( बाबर ) लुप्त होगया।

*टिप्पणीः—उत्तरी भारत के नरेशों में राणा सांगा ( संग्रामसिंह ) का स्थान महत्वपूर्ण है। यह राजगद्दी पर वि० सं० १५६६ में बैठा। निधनकाल इसका १५८४ है। इसने अनेक लड़ाइयों में शत्रुओं को परास्त कर इतिहास में अपना नाम उज्वल किया है। इसे हिन्दुओं का अन्तिम शक्तिशाली राजा मानना चाहिये।

मेघ के सदृश उस चित्तौड़-अधिपति राणा सांगा के चलने पर घोड़े पानी की बूंदों की तरह चले। उस समय ( सेना की ओट में ) सूरज के छिप जाने से ठीक रात्रि के समान मालूम हुआ। उस अंधियारे में बादशाह ( बाबर ) भयभीत होकर अदृश्य होगया।

जब राणा सांगा ने क्रोध किया, तब उसके बहुत से घोड़े ( अश्वारोही ) दौड़कर दुश्मन तक जा पहुंचे। उस सैन्य-घटा की ओट में सूरज भी नहीं दिखाई देने लगा। मुसलमान बादशाह ( बाबर ) उस अंधियारे में विलीन होगया।

## [१६] महाराणा सांगा द्वारा यवन – संहार

गीत ( छोटा साणोर )

मोटे प्रवि सूर भेदतांमंडल, जगि मारग थेय जुवा जुवा।
सांगा मरणि मरे तनस्राई, हंस तणा रथ मोख हुवा ॥१॥
असपति घड़ा सांग आखाड़े, मैद थिया सुर तणे सथ।
मारगि मीत मरणि मेवाड़ा, रथि आफलै न चड़ै रथ ॥२॥
कटेन खूटा खेत कलोधर, घर छूटा आवरत घणा।
दाणव अरण टलै दोहाड़ै, टालो वाचा रथां तणा ॥३॥
वैकुंठ वाट वहै तन वड़ दल, भागो संगट सारही भाण।
राइमलोत तणै राजूथलि, बाजि न ऊथल टलै विमाण ॥४॥

( रचयिताः—अज्ञात )

अर्थः—महायुद्ध में सूय-मण्डल को भेदते समय सांसारिक नियम से मृत हिन्दू और मुस्लिम वीरों के रास्ते अलग २ माने गये हैं, इसलिए राणा सांगा द्वारा मारे गये यवन योद्धाओं की भीड़ से जो रवि का रथ घिर गया था, वह हिन्दू वीरों के मरने पर मुक्त होगया।

जब मेवाड़-अधिपति राणा सांगा के द्वारा शाही सेना मारी गई, तब वे सय्यद जाति के मृत मुसलमान योद्धा, सूर्य-मण्डल की ओर जाने लगे। रास्ते

में देवताओं का साथ होगया। अतः सूर्यलोक जाने के लिए झगड़ने लगे। वे परस्पर धक्कम-धक्का करने लगे, जिससे रथ उस रास्ते में आगे न बढ़ सके।

क्षेत्रसिंह की कला को धारण करने वाले अर्थात् क्षेत्रसिंह के वंशज राणा सांगा ने यवन-योद्धाओं को काटकर नष्ट कर दिया। राणा सांगा से भिड़कर यवन योद्धा अपने घर सदा के लिए खो बैठे। ( परन्तु मरकर भी वे ) दानव-सदृश शत्रु, उस दिन सूर्य के सारथि अरुण को रास्ते से हटाने लगे, किन्तु मृत हिन्दू महारथियों ने उन अनेक यवनों को वहां से भी हटा दिया।

राणा रायमल के पुत्र ने बहुत-सी यवन सेना को स्वर्ग के रास्ते में ढकेल दिया, किन्तु उसके राज-पद-धारी मृत वीर-समूह ने अपने घोड़ों की टापों से मृत यवनों के विमान उलट दिये और सूर्य-रथ पर आई हुई आपत्ति को दूर कर दिया।

## [२०] स्वाभिमानी राणा उदयसिंह*

गीत ( छोटा साणौर )

वधीये वकवाद सरस ढीलीवे, चीतोड़ो पोरस चढ़ियो।
अनमी कंध तुहालो ऊदा, असुरां चलण नभ आभढ़ियो ॥१॥
वँस खटतीस अड़प वाखाणे, मछर प्रमाण तूझ खूमाण।
सिर नमियो नहीं सांगाउत, सामे जाइ चलणो सुरताण ॥२॥
अकबर तणो देखि आडंबर, सब हरियो संसार सह।
पुरे नहीं दमत पँडवेसां, पाघ प्रवीत मेवाड़ पह ॥३॥

( रचयिता:— अज्ञात )

अर्थः—हे राणा उदयसिंह ! दिल्ली में तेरे लिए रस भरी चर्चा फैल गई है कि, चित्तौड़ के स्वामी का पौरुष वृद्धि पर है; क्योंकि तेरा अनम-स्कंध,

*टिप्पणीः—यह महाराणा सांगा का सबसे छोटा पुत्र था, जो वि. सं. १५९७ में मेवाड़ का राजा बना। इसने अपनी राजधानी, चित्तौड़ से हटाकर उदयपुर बनाई। इसी के समय वि. सं. १६२४ में मुगल-सम्राट अकबर का आक्रमण होने पर चित्तौड़ का तीसरा शाका ( महायुद्ध ) हुआ।

जो मुसलमानों को विचलित कर देने वाला है, वह उठकर आकाश से जा लगा है।

छत्तीसों राजवंश तेरे हठ की प्रशंसा करते हैं और तेरे मतवालेपन ( साहस ) को सही समझते हैं। हे खुमाण वंशज सांगा के पुत्र ! तू सामने जाकर सुलतानों को विचलित करने वाला है। तूने अपना मस्तक शाह के आगे कभी नहीं झुकाया है।

अकबर का आडम्बर देखकर सब उससे हार मान गये हैं; किन्तु शाह के हाथ, तेरी पगड़ी को छू नहीं पाये हैं। हे मेवाड़-अधिपति ! एक मात्र तेरी ही पगड़ी पवित्र रही है।

## [२१] स्वाभिमानी राणा उदयसिंह

गीत ( छोटा साणोर )

स्त्राइ राउ मरिस वदंता ममसरि, वसुहंतरि जोवतां विचार।
उदयसिंघ सीस अण नमियै, कयास गरवित हींदूकार ॥१॥
असपति सों चावति आखंतां, पुरोबोले पूठि पकरै।
कमल राण न नमे तिणि कारणि, धड़ राइहर मन मछर धरै ॥२॥
सुरताणवै अनैं सीसोदा, जामल व्योह असमाण जगीस।
उतमँग राण सलामि न आवै, पिंड अंजसियै कुल पैंत्रीस ॥३॥
साहि परति संग्राम साह सत, निकलँक उद्दयसींघ नर।
पह गह अंग अचल सिर पखो, ध्रू अंबर जांलगे धर ॥४॥

(रचयिताः– अज्ञात)

अर्थः—

पृथ्वी पर शत्रु बादशाह तथा राणा उदयसिंह की बराबरी को देखकर विचार पूर्वक कहना पड़ता है कि, राणा ने कभी भी मस्तक नहीं झुकाया जिससे हिन्दु गौरवान्वित हुए ।

सब लोग बदशाह को चुनौती देते हुए कहते हैं कि, तू राणा का पीछा करके अपनी प्रतिज्ञा को क्यों नहीं पूरी करता ? तेरे आगे [एक] राणा उदयसिंह के मस्तक नही झुकाने से सब राजाओं के तन और मन उछला करते हैं।

सुलतान और शिशोदिया राणा में (मानों) जन्म से ही वियोग (विरोध) पड़ा हुआ है, यही कारण है कि शाही दरबार में वह (राणा) सलामी नहीं देने आता और न उसका मस्तक ही झुकता है। यह देखकर पैंतीसों शाखा के राजपूत गौरव अनुभव करते हैं।

लड़ाई में राणा उदयसिंह शाह के आगे साहस दिखाते हैं (पीठ नहीं दिखाते हैं) इसोलिये वह निष्कलंक है। उसके अनम्र मस्तक की पगड़ी, जब तक ध्रुव, आकाश और पृथ्वी है, तबतक शोभा पाती रहेगी।

## [२२] महाराणा प्रताप * (प्रथम) के आतंक से शत्रु-स्त्रियों का निराश होना

गीत ( छोटा साणौर )

रिमहर ची घरण कहे यम राणा, हलदीघाट हुवां रण हाक।
चोल करण रहियो चित मांही, अंग अहवात तणी अभिलाख ॥१॥
चोरँग रँग चाचर चीतोड़ा, धड़ चेतन मुहड़े खग धार।
दिल साबत करवां गज दंतां, सुंदर खांत रही सिणगार ॥२॥
अरि-राणी आखे उद्दावत, अहवातरी छूटगी आस।
जला बोल पातल सूं जुड़तां, हला बोल चित रही हुलास ॥३॥
महलां खल वीछड़ नहँ मलिया, मलिया तोसूं लोह मही।
अण रँगिया चूड़ा उतरिया, रँगवा री चित खांत रही ॥४॥

( रचयिताः- अज्ञात )

---

*टिप्पणीः—यह महाराणा उदयसिंह का पुत्र था, जो वि० सं० १६२८ में गोगुन्दे में गद्दी पर बैठा। इसने स्वातन्त्र्य धर्म अपना कर आजन्म मुगल सेना से युद्ध किया। इसका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। इसकी मृत्यु सं० १६५३ में हुई।

अर्थ:—

हे महाराणा ! मुसलमानों की स्त्रियां हल्दीघाटी की रण-हुंकार सुन कर अपने स्वामियों से कहती है कि, विनोद की इच्छा तथा अहिवात (सौभाग्य) की अभिलाषा (तो) हमारे मन ही मन में रह गई।

दुश्मनों की औरतें कहती हैं—हमारी इच्छा थी कि, हमारे पति युद्ध-भूमि में हाथियों को मारकर जो (हाथी) दांत लायेंगे, उनके हम चूड़े पहन कर शृंगार करेंगी, किंतु चित्तौड़ के अधिपति ने हमारे स्वामियों के संमुख होकर खड्गाघात किया, जिससे उनके भाल-स्थल रक्त से चौगुने रंग गये और हमारी (उपर्युक्त) इच्छा मन की मन में रह गई।

हे राणा उदयसिंह के पुत्र ! शत्रुओं की रानियां कहती हैं कि, भयावने राणा प्रताप से हमारे स्वामियों के भिड़ जाने पर जो दुर्घटनायें हो रही हैं; उससे हमारा हर्ष चित्त में ही रह गया है और हमारे अहिवात (सौभाग्य) की आशायें भी मन से उठ गई हैं।

हे महाराणा ! जिसने तुझसे युद्धमें लोहा लिया, वह दुश्मन अपनी स्त्री से बिछुड़ कर फिर नहीं मिल सका। उनकी औरतों के चूड़े बिना रंगके ही उतर गये। उन्हे रंगने की इच्छा उनके मन में ही रह गई।

## [२३] सँपेरा—अकबर शेषनाग रूपी राणा प्रताप को वश में न कर सका

गीत ( छोटा साणोर )

आलापे जाइ गारुड़ अकबरि, दीधे त्रीसअ-सट-कुल दाउ।
राण सेस वसुधा खत्र राखण, रागि न पांतरियो अहिराउ ॥१॥
मणिधर छत्रधर अवर डुले मन, ताईधर रजधर सीध तण।
फूंगीधर पतसाह फिरंते, फिरे कमल तन सहस फण ॥२॥
गढ गढ राफ-राफ दाखे गह, रेण वंम क्रत लाज अरेम।
पंडर वेस नाद अण पीणग सेस न आयो पात नरेस ॥३॥

अनि आया असपति आवाहनि, भुअंगां भुआँग हुए दल भंग ।
रहिया रेण खत्री धम्र राणा, सेत उरंग कलोधर संग ॥३॥

(रचयिता:— अज्ञात)

अर्थ:-

बादशाह अकबर सँपेरे की तरह जाता है और राग–अलाप २ कर छ-त्तीसों वंश के राजपूतों को सांप के समान वश में कर लेता है; परन्तु पृथ्वी और क्षात्र–धर्म का रक्षक (अथवा पृथ्वी पर क्षत्रिय धर्म को निभाने वाला) महाराणा प्रताप ही शेष-नाग की तरह एक ऐसा रहा, जो उस (अकबर) के राग पर मुग्ध होकर वशीभूत नहीं हो सका।

रजोगुण धारी मणिधर (सर्प विशेष) रूपी जितने भी राजा थे, उन्होंने (तो) पृथ्वी के स्वार्थ में पड़ कर मन को विचलित कर दिया (धर्मच्युत हो गये), पुंगीधर (सँपेरा) बादशाह (भी) मंत्र साधते हुए घूमने लगा (उन राजाओं पर उसका वश चल गया), परन्तु सहस्र फणधारी (शेषनाग) की तरह महाराणा प्रताप ही (एक ऐसे) रहे जो उलटे उसी (सँपेरे की) ओर शरीर को मरोड़ते हुए झूमने लगे।

प्रत्येक दुर्गाधिपों के सर्पों की तरह पकड़े जाने पर वे यही पुकारने लगे कि हे राणा राहल के वंशज! हम पकड़े जा चुके हैं! हे रावल रणसिंह के वंशज! एक तू ही लाज-रक्षा के लिये अड़ने वाला है! हे राणा प्रताप! एक तू ही ऐसा है, जो सँपेरे रूपी बादशाह के नाद पर मुग्ध नहीं हुआ और उसओर आकर्षित नहीं हो सका।

शाह के आह्वान पर सब के सब राजा चित्त-भंग होकर सांपों की तरह उस सर्प-यज्ञ में आ २ कर भस्म हो गये; किंतु पृथ्वी पर क्षात्र धर्म को निभाने वाला राणा सांगा की कला को धारण करने वाला (सांगा का वंशज) एक प्रताप ही ऐसा रहा, जो श्वेत सर्प की तरह उस सर्प यज्ञ से बच गया।

## [२४] यश और धन को उत्पन्न करने वाला, राणा प्रताप का खड्ग

गीत (छोटा साणौर)

पारँभ गुर तूझ संपेखे पातल, बडा सुरिंद मिलि करे विचार।
किम खग धार चलावी कीरति, धन आवीयां स किम खग धार ॥१॥

इणि परि तूझ तणे उदाउत , रुद्र सुर अचिरज हुवा रहै ।
सुजस सँपति बे आह्मो साह्मा, वाढ खड़ग ऊपरी वहै ॥२॥
प्रम सुर हुआ अचंभम पातल, धर असपति मेवाड़ धणी ।
अतिजस केम चालियौ अणिये, अथ आयौ किम मुहरि अणी ॥३॥
उत्तिम अधिम देव रज ऊपरि, के घट राखे रमे कला ।
धार खडग वे मयँक कलोधर, कीति अनै चलबी कमला ॥४॥

(रचयिताः– अज्ञात)

अर्थ –

(हे राणा प्रताप !) तेरे प्रारम्भिक आक्रमण को देखकर सब बड़े २ देवता मिलकर सोचते हैं कि, राणा प्रताप ने खड़ग-धार से यश किस प्रकार फैलाया ? और लक्ष्मी को किस प्रकार उन्होंने एकत्रित किया ।

हे राणा उदयसिंह के पुत्र ! इस बात पर रुद्र और अन्य देवता भी आश्चर्य करते हैं कि, यश और लक्ष्मी दोनों आमने सामने होकर तेरी खड़ग-धार पर किस प्रकार चलते हैं ?

हे पृथ्वी-पति मेवाड़-अधिपति राणा प्रताप ! तेरे इस कृत्य पर ईश्वर भी आश्चर्य करता है कि, तेरे खड़ग की अनी पर एकसाथ अधिक यश किस प्रकार चल सका और लक्ष्मी कैसे चली आई ?

(हे राणा प्रताप !) तेरा रजोगुण, उत्तम मध्यम देवताओं से भी बढ़ाचढ़ा है । (यह ठीक है) ऐसे रजो गुण को तेरे अतिरिक्त कौन दूसरा धारण कर सकता है ? कौन तेरे समान राजसी खेल ऐसे खेल सकता है ? हे राणा ! केवल (एक) तू ने ही कीर्ति और कमला को साथ २ आमने सामने चलाया है ।

स्पष्टीकरण—

कीर्त्ति और लक्ष्मी में स्वाभाविक विरोध होता है । यश चाहने वाला धन इकट्ठा नहीं करता और धन–संग्रह–कर्ता के अधिकतर कृपण होने से वह यश नहीं जुटा सकता । इसके उपरान्त फिर तलवार की धार पैनी होती है, उस

पर चलना वैसे ही कठिन है, परन्तु राणा प्रताप ने यश और धन दोनों को एक ही संकीर्ण तीखे पथ पर आमने सामने चला कर कमाल किया है। कवि के भाव यहां अनूठे ही है। राणा प्रताप के खड्ग–बल से परस्पर विरोधी यश और धन एक ह रास्ते से गुजरे हैं। परन्तु टकराये नहीं।

## [२५] शाह की सेवा करने वालों के प्रति राणा प्रताप की घृणा

गीत ( छोटा साणौर )

हाथी बँध धणां घणां हेमर बँध, कसूं हजारी गरब करो।
पातल राण हँसे त्याँ पुरमां, भाड़े महलां पेट भरो ॥१॥
सिंधुर किसा किसा तो सा हण, सोना कसा कसा सर सूत।
महा सबल ले अबल समापे, राणो कहे कसा रजपूत ॥२॥
बाजा कसा कसा त्याँ बाजँद, मदझर कसा कसा त्यां मान।
पग गहलोतन (गिणे) सूपहाँ, नरते असुर किया नरमान ॥३॥
साँगाहरा साह अकबर सूं, सींग खड़ा कसु रद खगसाय।
पत सिसोद न माने सुपहाँ धी त्रिय ले पग लागे धाय ॥४॥

( रचयिता:–'जाडा मेहडू' )

अर्थ:—द्वार पर हाथी घोड़े बँधे रहने पर एवं हजारी मनसबदार ( एक हजार सिपाहियों के सरदार ) बनकर भी तुम लोग राणा के समक्ष क्या गर्व कर सकते हो ? राणा प्रताप ( तो ) तुम्हे किराये के टट्टू समझ कर परिहास किया करता है और कहता है कि शाही महलों में जाकर वे केवल अपना पेट भरते हैं।

राणा कहता है कि, द्वार पर हाथी रखना, तोशा-खाना होना, स्वर्ण-संग्रह करना एवं उनका पगड़ी बांधना सब व्यर्थ है, जबकि वे, सबल बादशाह के समक्ष अपनी अबलाओं को पेश करते हैं। ( और तो सब ठीक, परन्तु ) उन्हें 'राजपूत' कहलाने का भी अधिकार नहीं है। द्वार पर नक्कारे, दुन्दुभी आदि

बाद्य बजवाना, हयशाला में घोड़े व हस्तिशाला में हाथी रखना और शाह से सम्मान पाना यह सब गुहिलोत वंशी राणा व्यर्थ समझता है। ऐसे राजाओं के लिये वह ( राणा ) यही कहता है कि, ईश्वर ने उन्हें नर से दानव बना दिया है।

शिशोदिया राणा साँगा का वंशज ( राणा प्रताप ) अकबर के समुख तलवार उठाने वाला है ( सिर झुका देने वाले नहीं है )। वह यही कहता है कि, खड्ग धारण करते हुए भी वे, सिंह कैसे माने जासकते हैं, जो दांतों तले तृण दबाया करते हैं और अपनी बेटी व औरतों को शाह के अर्पण कर उसके चरण छूते हैं ? मैं ऐसे राजाओं को राजा नहीं मानता।

## [२६] राणा प्रताप के युद्ध-वर्णन में कवियों की असमर्थता

गीत ( छोटा साणोर )

वधियो बामाव तणो वड पातां, राणा अजुवालता रहि ।
एकणी कलह जिते गुण आखां, करे जीतोबीजोय कलह ॥१॥
आखर तणो होय तिम ऊजम, धर छल वल होये धकचाल ।
रेण वले चितवे रूपक, राणो वले करे रिणताल ॥२॥
माझियां मार भयँक कुल मंडण, मछर इतो दाखवे मंन ।
पुणे जिते कवि एक प्रवाड़ो, उभे प्रवाड़ा करे अंनि ॥३॥
ए बामाव वधे उदावत, मटे न निम वासुर तिल मात ।
पार न पातल तणां प्रवाड़ा पार न गुण कहता कविपात ॥४॥

( रचयिताः— अज्ञात )

अर्थः—राणा के उज्वल यश-वर्णन करने वाले कवियों से भी बापा का वंशज ( राणा प्रताप ) बढ़ गया ( कविगण राणा प्रताप के यशोगान करने में पिछड़ गये ) क्यों कि जब तक कवि राणा के एक युद्ध का वर्णन नहीं कर पाते हैं, तब तक वह दूसरा युद्ध आरम्भ कर देता है।

कविगण अक्षर ( काव्य ) रचना करने के प्रयत्न करते हैं इतने में फिरसे पृथ्वी पर राणा द्वारा रक्त-पात हो जाता है। जब कवि फिरसे नया रूपक बाँधने बैठता है इतने ही में राणा फिर युद्ध में कराघात शुरू कर देता है। अर्थात् कवि का चोक ही नहीं जमता।

सेना-पतियों के मारने और अपने वंश का, चन्द्रमा के तुल्य मंडन करने वाले राण प्रताप के मन का मतवालापन कहाँ तक कहा जाय ? (अरे !) कविगण एक युद्ध का बखान पूरा कर ही नहीं पाते हैं, तब तक वह ( राणा ) दूसरा युद्ध छेड़ देता है।

उदयसिंह के पुत्र राणा प्रताप का यश, दिन रात बढ़ता ही जायेगा, वह तिलमात्र भी नहीं घटेगा; क्यों कि न तो प्रताप के युद्धों का पार है और न कवियों के गुण बखान करने का ही।

## [२७] अकबर और महाराणा प्रताप

गीत ( छोटा साणोर )

खटके खत्र वेध मदा खेहड़तो,
दलपत दाख मतो खत्र दाव ।
अकबर साह तणे ऊदावत,
राण हिये चलणे अनिराव ॥१॥
नह पालटे खरड़ के अहनिस,
घड़ दुरबेस घड़े घण घाइ ।
साँगा हरो साह आलम सूं
पतो रहे मह पत अन पाय ॥२॥
धर वीहर परताप खड़ग धर,
सूज बिसर नहँ पाखर सेर ।

अकबर ऊवर माल आहाड़ो,
ओड़गो सेवग भूप अनेर ॥३॥

राव हींदवो अनै राव रवहां,
राणों आपांणी कुल रीत।
पड़िया रहे अवर नर पावाँ,
चड़ियो कुम्भ कलोधर चीत ॥४॥

( रचयितः- अज्ञात )

अर्थः—( बादशाह अकबर के मनमें ), महाराणा उदसिंह का पुत्र क्षत्रिय-वीर ( राणा प्रताप ) दुश्मन की सेना को छिन्न भिन्न कर खदेड़ता हुआ सदा खटकता है। प्रताप के दावपेंच और मत्रणा की प्रशंसा शाही सेना-पति किया करते हैं। प्रताप का भाला अकबर के हृदय को भी विचलित करता है।

राणा सांगा का वंशज राणा प्रताप, सभा में जाकर ( कभी भी ) शाह के चरण नहीं छूता है। वह ( तो हमेशा के लिये अकबर के मनमें ) खटकता ही रहता है। प्रतिज्ञा से टलता नहीं है। मुसलमान फकीरों की सेना को वह विशेष आघातों से चोट पहुँचाता ही रहता है!

वह वीर केशरी प्रताप खड्ग धारण कर रात दिन सजा हुआ रहता है, घोड़े से भी पाखर नहीं हटाता। इन्हीं गुणों के कारण वह आहड़ा ( राणा प्रताप ) अप्रत्यक्ष रूप में अकबर के हृदय का हार बन गया; किन्तु अन्य राजा ( तो ) उस ( अकबर ) की कृपाकांक्षा में सेवक बन कर ही रहे।

महाराणा हिन्दुओं के स्वामी हैं और अकबर मुसलमानों के, ( दोनों बराबर हैं ); परन्तु वह राणा कुम्भा का वंशज प्रताप, कुल-मर्यादा से न डिगने के कारण बादशाह के हृदय में बस गया; जब कि, अन्य राजा बादशाह के पैरों में ही पड़े रहे। ( चूंकि वे राजा कुल-मर्यादा को लाँघ चुके थे। )

## [२८] स्वाभिमानी राणा प्रतापसिंह ( प्रथम )

गीत ( छोटा साणोर )

आयां दल सबल सांमहों आवे, रँगियो खग खित्रवाट रतो ।
यो नरनाह नमै नहँ आवै, पतसाहां दरगाह पतो ॥१॥
दाटक अनड़ दंड नहँ दीधो, दोयण धड़ सिर, दाव दियो ।
मेल न कियो जाय बिच महलां, केल्पुरे खग मेल कियो ॥२॥
किलमां बांग न सुणिये काना, सुणिये वेद पुराण सुभै ।
अहाड़ो सूर मसीत न अरचे, अरचे देवल गाय उभै ॥३॥
असपत इन्द्र अगन आवड़िया, धारां झड़िया सहे धका ।
घण पड़ियां मांझड़ियां घड़ियां, ना धीहड़ियां पड़ी नका ॥४॥
आखी अणी रही ऊदावत, साखी आलम कलम सुणो ।
राणे अकबर बार राखियो, पातल हिन्दू धरम पणो ॥५॥

( रचयिता:–अज्ञात )

अर्थ:—तलवार और रजपूती बट के रङ्ग में रङ्ग कर ( लीन होकर ) राणा प्रताप, शाह की सबल सेना के आने पर अवश्य ही सम्मुख होकर जा टकराता था परन्तु वह शाह के आगे सिर झुकाने के लिए दरबार में कभी नहीं गया ।

इस नहीं झुकने वाले वीर प्रताप ने कभी दण्ड नहीं दिया । देने में ( केवल ) शत्रु सेना पर अवश्य दांव दिये । इसने शाही-महलों में जाकर मेल ( संधि ) कभी नहीं की, मेल किया, तो केवल तलवारों का ही ( तलवार से तलवार बजाई ) ।

इसने मुसलमानों की बांग, कानों से ( कभी ) नहीं सुनी, सुनने में केवल वेद पुराणों की कथा ही सुनी । इस आहाड़ा-सूर्य ने मस्जिद की पूजा कभी नहीं की । पूजा की, तो गौ और देवालय की ।

बादशाह और यह नरेश्वर सामने होकर भिड़ते रहे और खड्गघात के धक्के सहते हुए कटते रहे, ( यहां तक कि, ) आपत्ति का समय आने पर कई वीर ( योद्धा ) भी मारे गये, परन्तु प्रताप ने शाह के साथ अपनी कुमारियों की निकाह नहीं की। ( शाह के साथ शादी नहीं की )।

राणा उदयसिंह के पुत्र महाराणा प्रताप की आन साबित रही ( टेक बनी रही ), जिसका साक्षी, समूचा संसार और स्वयं मुसलमान भी हैं। राणा ने ही शाह अकबर के समय हिन्दू धर्म को बनाये रक्खा ( नष्ट नहीं होने दिया )।

### [२६] महाराणा प्रताप ( प्रथम ) की युद्ध–प्रशंसा

गीत ( बड़ा साणोर )

वीजड़ ताप तो नमो परताप सांगण त्रिया,
जगत आ अगम गत बात जाणी।
कहर राणा तणी बार मज एकठा,
पिसण राखें नहीं हंस पाणी ॥१॥

उदउत आज दुनियांण मह ऊपरां,
मार गे ताप लागो सबांही।
हंस राखे तयां नीर अलगो हुवे,
नीर राखे तियां हंस नाहीं ॥२॥

कियां खग हाथ दुहुँ राह मातो कलह,
दूठ लागो सत्रां एण दावे।
जीव री आस जो पिसण नहँ ग्रहे जल,
जल ग्रहे पिसण तो जीव जावे ॥३॥

दईवो—दई—गति कूंभक्रन -दूसरो,
चाय गुर आप रे हंम चाले।
राण दइवाण परहंस लागो रिमां,
हंम जल जुजुवा पंथ हाले ॥४॥

( रचयिताः– अज्ञात )

अर्थः—हे राणा प्रताप ! आपको नमस्कार है, आप दूसरे ही राणा सांगा हैं। आपकी तलवार के ताप की अगम्य ( अपार ) ख्याति संसार में इस प्रकार फैली हुई है कि, आपके युद्ध करते समय शत्रु, प्राण और नूर ( प्रतिष्ठा ) दोनों ही एक साथ नहीं रख पाते हैं।

हे उदयसिंह के पुत्र ! आज संसार में आप सर्वोच्च हैं। आके शस्त्र का ताप ( तेज ) सबों को छू रहा है। जो कोई उस ताप से ( डरकर) प्राण रखा चाहता है, उसका नूर दूर हो जाता है ( वह अपनी प्रतिष्ठा खो बैठता है ) और जो अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, वह जिन्दा नहीं रह सकता।

आप खड्गाघात करते हुए युद्ध में मतवाले होकर दोनों रास्तों ( प्राण चाहने वालों की प्रतिष्ठा और प्रतिष्ठा चाहने वालों का प्राण हरण करने ) पर तुल गये हैं, और इसी दाव से शत्रुओं को दूषित करने लगे हैं। यही कारण है कि, जो दुश्मन जिन्दा रहना चाहता है वह प्रतिष्ठा नहीं रख पाता और जो प्रतिष्ठा के अभिलाषी हैं, वे जिन्दा नहीं रह पाते।

हे दूसरे राणा कुम्भकर्ण ! तेरी गति देवाधिदेव के तुल्य है। जो ( मनुष्य ) तुझे अधिक चाहता है, संसार में उसी की गति है ( जीवित रह कर सांसारिक सुखों का उपभोग कर सकता है )। हे शिव के दीवान राणा ! आप परम हंस ( ईश्वर ) के स्वरूप होकर शत्रुओं के पीछे पड़ गये हैं, यही कारण है कि, दुश्मनों की प्राण एवं प्रतिष्ठा दोनों एक साथ नहीं टिक पाती।

## [३०] महाराणा प्रताप (प्रथम) के खड्ग-प्रहार से-
## बहलोलखाँ का अपने घोड़े सहित कट पड़ना-

गीत ( बड़ा साणौर )

गयँद मान रा मोहोर ऊभो हुतो दुरतगत ,
सलहपोसां तणे जूथ माथे ।
तद वही रूक अर ऊंक पातल तणी ,
मुगल बहलोल खां तणे माथे ॥१॥
तणो भ्रम उद असवार चेटक तणे ,
धणे मगरूर बहराग घटकी ।
आचरे जोर मिरजा तणे आछटी,
भाचरे चाचरे बीज भटकी ॥२॥
सुरतन भींजतां खीजतां सेल गुर ,
पोहो अन दीजतां कदम पाछै ।
दांत चढिया जवन सीस पछटै दुजड़ ,
तांत सावण ज्यूं हीं गई आछै ॥३॥
बीज अवसाण केवाण उजबक बहा ,
राण हतवाह हिंदु राह रटियो ।
कट झलम सीस बगतर बरँग अंग कटै ,
कटे पाखर सुरँग तुरँग कटियो ॥४॥

( रचयिता:-गोवर्धन बोगसा )
[डींगरोलवालों का पुरखा]

**अर्थ—**

जब शाही सेनापति कुमार मानसिंह कछवाहे के हाथी के आगे अपने साथियों सहित और कवच धारण किये हुए, द्रुतगामी घोड़े पर सवार होकर

मुगल बहलोलखाँ डटा हुआ था, तब—राणा प्रताप की न रुकने वाली तलवार का प्रहार उस ( बहलोलखाँ ) के सिर पर हुआ।

राणा उदयसिंह की भ्रांति देने वाले चेटक घोड़े के सवार प्रताप ने जब विशेष गर्व के साथ शत्रु पर चलने वाले खड्ग को बड़ी ताकत से उस मीर पर चलाया, तब वह ( खड्ग ) उसकी खोपड़ी व भाल-स्थली पर बिजली की तरह चला ( टूट पड़ा )।

जब वीर राणा का शरीर शूर-वीरता के रस से सराबोर हो गया, तथा सैलगुरु ( बड़ा भाला रखने वाला या पहाड़ी प्रदेश का राजा ) (राणा प्रताप) क्रुद्ध हो गया, तब उसने अपना एक कदम भी पीछे नहीं हटाया और यवन के ठीक सामने आने पर तलवार का प्रहार ऐसा किया, जिससे उसका शरीर, ताँत से साबुन की तरह कट गया।

जब महाराणा ने सावधानी के साथ बिजली के समान—उजबकी खड्ग का प्रहार किया, तब राणा के उस एक ही वार से बहलोलखाँ का चमकता हुआ शिरस्त्राण, कवच, शरीर, पाखर और सुरंगी घोड़ा कट गया। राणा के उस प्रहार की प्रशंसा हिन्दू और मुसलमान दोनों ने की।

## [३१] शाह के प्रतिनिधि शाहजादा खुर्रम का उदयपुर आना और महाराणा अमरसिंह* (प्रथम) के चरण छूना

गीत ( छोटा साणोर )

रढ रामण नमो अमरसी राणा, मछर समूरत अवली माण।
माह मेमीधण नमो सुरताणा, मामो आ मिलियो सुरताण ॥१॥

*टिप्पणी— यह राणा प्रताप का बड़ा पुत्र था, जो वि० सं० १६५३ में मेवाड़ का राजा बना। बादशाह अकबर तथा जहांगीर से इसका १७ बार युद्ध हुआ, जिसमें इसने मुगल सेना को विकल कर दिया। अन्त में स्वयं शाहजादा खुर्रम ने साग्रह सन्धि की, जिससे मेवाड़ और महाराणा का गौरव अधिक बना रहा। वि० सं० १६७६ में इनका स्वर्गवास हुआ।

कलँक न लागो साँग कुलोधर, तूझ तणी निकलँक तलवार।
दिली तणो दरबार न दीठो, दिली-सुपह आयो दरबार ॥२॥
माण दुजोण अभिनमा मोकल, रण-रीजल माझी रिम-राह।
आठ वरस खीजावे आवे, पाँव-वंद वलियो पतसाह ॥३॥

( रचयिता:-अज्ञात )

अर्थ—

हे रावण के समान हठी महाराणा अमरसिंह ( प्रथम )! आपको नमस्कार है। आप मदोन्मत्तपन की साक्षात प्रतिमा है। आप दुश्मन से हमेशा प्रतिकूल रहते आये हैं। आपने कभी बादशाह की वंदना नहीं की, बल्कि बादशाह ही स्वयं आपसे आकर मिला।

हे राणा सांगा के वंशज! आपको कलंक ने कभी नहीं छूआ है, आपकी तलवार भी निष्कलंक रही है। ( पराधीन होकर चली नहीं )। आपने कभी दिल्ली दरबार नहीं देखा ( शाही सभा में नहीं गये )। दिल्लीश्वर ही आपके दरबार में आये।

आप मान में दुर्योधन के समान हैं। ( मानों ) आप दूसरे मोकल हैं। आप रण में रीझने वाले तथा शत्रुओं के मार्ग पर बढ़नेवालों के मुखिया हैं। यद्यपि आठ वर्ष तक मुगल बादशाह से विरोध रहा, फिर भी अन्त में (अभिमान को खोकर) बादशाह ही आकर ( आपकी ) चरण-वन्दना करके लौटा ( आप उसके पास सुलह करने नहीं गये )।

## [३२] स्वाभिमानी राणा अमरसिंह (प्रथम)

गीत ( छोटा साणौर )

पहाड़ चढै अममांग पाकड़े, मीट पूजवै यँद्र मही।
(तौही) खाग त्याग वंस खटतीसां, नागध्रहा जेवड़ो नहीं ॥१॥
अन अधपत ऊँचा ऊचरे, धर हूँता गिर चढण धरै।
माथा रहे बियां मोड़बँधा, अमर तांहरी कमर उरे ॥२॥

धन हिंदू, हिंदूआण तणो ध्रम, हींदू तूँ हींदुआ हदीस ।
जै जग जिग जोध जोगण पुर, मीसोदियो न नामै सीस ॥३॥
भड़ परबत गे सिया न भाजे, जावो सिर पटके जवन ।
उतर डिगे तो डिगे अमरसी, मेर माथलो नखत मन ॥४॥

(रचयिता:- अज्ञात)

अर्थ:—

यदि कोई महीप पहाड़ पर चढ़ जाय (बहुत ऊँचा बन जाय) अथवा आसमान को छूले और सूर्य द्वारा पूजा भी जाने लगे, परन्तु हे नागद्रहेश्वर (मेवाड़ अधिपति)! इन छत्तीसों राजपूती वंशों में कोई भी ऐसा नहीं है, जो खड्ग उठाने (वीरता) एवं त्याग (उदारता) में तेरी समानता करे।

यद्यपि अन्य महीप बड़े महान कहे जाते हैं और धरती से उठ कर पर्वत पर चढ़ने (उन्नत होने) का प्रयत्न करते रहते हैं, फिर भी हे महाराणा! उन मुकुटधारियों के मस्तक आपकी कमर से नीचे ही रहते हैं, अर्थात वे पराधीनता की लज्जा से न मस्तक ऊपर उठा सकते हैं और न देख व बोल सकते हैं।

हे हिन्दू राणा! तुझे धन्य है। तू हिन्दुत्व और हिन्दू धर्म की चरम मर्यादा है। कवि कहता है कि, यह शिशोदिया राणा उनके आगे कभी सिर नहीं झुकाता, जो राजा महाराजा, दिल्लीश्वर को महान कह कर योद्धा-रूप में (पराधीन बन कर) उन्नतावस्था को प्राप्त हो चुके हैं।

जो वीर पर्वतों तक पहुँच गये हैं (धन और बल से उन्नत बन गये हैं), वे तथा यवन सिर पटक २ कर रह जाते हैं (और सोचते हैं कि) महाराणा अमरसिंह, तो सुमेरु पर्वत से ऊपर उठे हुए ध्रुव-नक्षत्र के समान हैं, (अतः) जब उत्तर दिशा डिगेगी, तब ही यह महाराणा अपनी टेक से डिग सकता है अन्यथा नहीं।

## [३३] महाराणा कर्णसिंह * की मालवा पर चढ़ाई

गीत ( छोटा साणोर )

जवना सुअ अमर सुछल करनाजल, अप्रबल बल कह कथन असै ।
धर–दस–सहँस करी जो धम–चक, बांणा लाख कण रीत वसै ॥१॥
असपत पगां परत नहँ आवा, गज थट गावां लीध गरां ।
असपत दल मेवाड़ उजाड़े, धासां में मालवी धगं ॥२॥
पर हँसह घणां परां पागां पग, धूंदे पातल मांग बिआ ।
भीम भ्रात नै अनड़ भलावे, करन मालवै विग्रह किआ ॥३॥
थांणा हूँत रहिया नहँ थँबिया, धीगोणा पत साही धूज ।
बाल जाल कीदा द्रह बाटा, सहर भेल सा जसा सरूज ॥४॥
मांड़ें तणो नबाब मोकले, अरज पातसा नामे और ।
जंगम अनड़ चढ़े रायजादो, दहलां पड़े उजेण दमौर ॥५॥

( रचयिता:– अज्ञात )

अर्थः—माँडू का शासक मुसलमान ( सूबा ) यह कहलाता है कि, आपके जिन लक्ष्यबेधी बाणेत ( धनुर्धारि ) सैनिकों ने, दस हजार गाँवों ( मेवाड़ ) में पहले हलचल मचा रखी थी वे अब अमरसिंह के पुत्र प्रबल और स्वच्छंद कर्णसिंह के सामने कैसे टिक सकते हैं ? अर्थात अब उन्हें मालवा से भी भागना पड़ रहा है ।

* टिप्पणीः— यह महाराणा अमरसिंह ( प्रथम का ज्येष्ठ पुत्र था, जो बि. सं. १६७६ मे राज–गादी पर बैठा । मेवाड़ के राजकुमारों में यह सबसे पहला ही था, जो– शाही दरबार में गया । इसका निधन १६८४ में हुआ ।

जो हमेशा से बादशाह के चरणों में नहीं झुकने वाला मेवाड़ राज-वंशी ( कर्णसिंह ) है, उसने—शाही सेना द्वारा मेवाड़-प्रदेश ज्यों ही उजड़ा जाने लगा, त्यों ही हाथियों के समूह और पहाड़ी ग्रामों को अधिकार में लेकर मालव-भू-भाग को तले ( रसातल ) पहुँचा दिया है ।

बहुत से दूसरे ( विपक्षी ) प्राणी ज्योंही वहाँ ( मेवाड़ ) पर पहुंचते हैं, त्योंही उन पर वह आ पहुँचता है और दूसरे प्रताप व सांगा के समान ( वह ) उन्हें कँपा देता है । ( अब ) उसने अपने भाई भीमसिंह को पहाड़ी प्रदेश की रक्षा का भार सौंप कर मालवा में उत्पात मचा रखा है ।

शाही सैनिक, जो उत्पात मचाने वाले हैं, वे ( आज ) काँप रहे हैं और स्थापित किये हुए स्थानों पर रोकने पर भी रुक नहीं पाते हैं । उस कर्णसिंह ने सिरोंज जैसे शहर को जला दिया है, उजाड़ डाला है और उसे इधर उधर बिखेर दिया है ( नष्ट भ्रष्ट कर डाला है )

इस प्रकार माँडू का नवाब ( सूबा ) शाह के नाम अर्जी भेजता हुआ लिखता है कि, चलते फिरते पहाड़ के समान वह राजकुमार ( कर्ण ) जब ( युद्ध की ) तैयारी करता है, तब उसका आतंक उज्जैन तथा मंदसौर पर छा जाता है ।

## [३४] महाराणा जगतसिंह *(प्रथम) का यश

गीत ( छोटा साणोर )

गहतां सतडोर जगा खत्रियां गुर, बल मोजां वद अनल बल ।<br>
ऊड़े जग ऊपरे आहाड़ा, करती गुडी तणी कल ॥१॥

* टिप्पणी:—यह महाराणा वि.सं. १६८४ में राज गद्दी पर बैठे । बादशाह शाहजहां के साथ ठेठ तक इनका मनमुटाव रहा । डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देवलिया ( प्रतापगढ़ ) पर सेनायें भेजकर वहां के नरेशों को खूब खदेड़ा । इनकी दान शीलता बहुत प्रसिद्ध है । सं. १७०६ में इनका स्वर्गवास हुआ ।

कव–कव मुख जैकार करंतां, अलहूँता वद गयण अड़ी ।
मेर सखर ऊपर मेवाड़ा, चंग जुहीं गुण बांण चड़ी ॥२॥
करण सुजात्र वदींसों करगां, कल हूँता गम अगम किया ।
चाडी ध्रू मंडल चीतोड़ा, ध्रू दाहण जू ब्रह्म धिया ॥३॥
वयण वाखाण राग पँग वाजे, अकल भुयण घण सुणे अम ।
राणा अर घणा दन रहमी, जग जग पंगी चंग जम ॥४॥

( रचयिता:–अज्ञात )

अर्थ:—हे क्षत्रियों के गुरू आहड़ा-नरेश महाराणा जगतसिंह ! तेरे, हाथ में सत की डोर ले लेने पर उदारता रूपी पवन की उमंगों के बल पर बढ़ती हुई ( तेरे ) यश की सुन्दर पतंग संसार के ऊपर उड़ती रहती है ।

प्रत्येक कवि के, मुख से जय जयकार करने पर वह ( पतंग ) पृथ्वी से ( उठकर ) आकाश में जा पहुँची । हे मेवाड़-अधिपति ! वह तेरा गुण–गान पतंग रूप होकर सुमेरु पर्वत के शिखर पर सुशोभित हो रहा है ।

हे महाराणा कर्ण-पुत्र चित्तौड़-अधिपति ( जगतसिंह ) ! तेरे हाथों द्वारा यह तेरी कीर्ति अपनी क्रान्ति से सबों को चकित कर देती है । यह ब्रह्मा की पुत्री ( यशोगान रूपी कवि-वाणी ) तेरे द्वारा ध्रुव के दाहिने पार्श्व में स्थान प्राप्त कर चुकी है । अर्थात् ध्रुव की तरह निश्चल अथवा ध्रुव तक तेरी कीर्ति पहुँच चुकी है ।

बहुत से राजाओं की कला हीन पामर कीर्ति हमने बहुत सुनी हैं, जो ( केवल ) वचनों द्वारा प्रशंसात्मक राग में गाई जाती हैं; किन्तु हे महाराणा ! तेरी कीर्ति ( तो ) युगांत में भी पतंग के समान सुशोभित रहेगी ।

## [३५] महाराणा जगतसिंह (प्रथम) का यश वर्णन

गीत ( छोटा साणोर )

कोई दालद चारा तणो भेम करोमत, आठ पहर ऊचरो अम ।
जगपत राणा तणो करे जस, जग ऊपर तलियार जम ॥१॥

कुण कह सके चोर भय के थी, दालद रे भै नको डरे ।
कोटे गढे हमीर कलो धर, कोटवाल जस हाक करे ॥२॥
कूट अन्याउ अमांपत काढे, कव सूचाव नियाव करे ।
सांगा हरा तुहालो समवद, फेरा अत त्रहुँ लोक फरे ॥३॥
अनड़ ओट गढ़ कोट ऊलांगे, वाट घाट ऊवाट वहे ।
अमरा हरा नगर वच ऊभो, राणा जस जागतो रहे ॥४॥
करन सुजाव तणो कांमगर, सुणियो त्रिहु लोके सरम ।
मोटे साद सरम पोह मोटे, जागो-जागो कहे जस ॥५॥

( रचयिता:—अज्ञात )

अर्थः— राणा जगतसिंह का यश-रूपी तलारक्षक ( कोतवाल ) आठों प्रहर कहता रहता है कि, कोई भी दरिद्र के प्रचार की शंका मत करो !

राणा हमीरसिंह के वंशज का यश-रूपी कोतवाल जब दुर्ग पर खड़ा हुआ गरजता है ( हुँकार करता है ), तब कौन कह सकता है कि, हमें अमुक चोर का डर है ? ( वहाँ ) कोई भी दरिद्र के डर से नहीं डरता है ।

हे राणा साँगा के वंशज ! तेरा यश रूपी चौकीदार तीनों भुवनों में घूमता रहता है । वह अन्याय और ( मुगल ) बादशाहों को एक ही साथ मार-कूट कर बाहर निकाल देता है और जो कवि-गणों का सम्मान करते हैं, उनके साथ न्याय करता है ( उनके अनुकूल रहता है ) ।

पहाड़ों की ओट और गढ़ों की दीवारों को लाँघता हुआ, पहाड़ी घाटियों एवं जंगलों के ऊबड़ खाबड़ मार्गों को पार करता हुआ हे राणा अमर के वंशज ! तेरा यश नगरों के बीच सदा जगमगाता रहता है ।

हे राणा कर्ण के पुत्र ! तेरा यश-रूपी अधिकारी तीनों लोकों में उत्तम सुना गया है । बड़े सवेरे वह उच्च स्वर में सबको जागृत करने के लिये संबोधित करता रहता है ।

## [३६] राणा जगतसिंह ( प्रथम ) की उदारता

गीत ( बड़ा साणोर )

किसू कोड़ अरबज तणो कहां, खरचवा परा रिध ऊपरे खेस ।
खरब नी खरब माहा पदम नी लागी खटक, जाचणा जगमतो रहेज (ग) तेम ।१

कूँजरां सांमणे दियण इचरज किसो तखत देतो थको निको तापे ।
दूथियाँ आजरस करन रो डीकरो, आन रो मेर लँक महत आपे ।।२।।

जायगे देव देवां तणी जालवे, मिण धरे नाग पाताल मांही ।
सुजस रो भूखियो राण सिसोदियो, नीपणा नांहां दिये तिको नांही ।।३।।

ब्रह्म हँस जल्लवे गुरड तु हीज विमन, शङ्कर जेमनांदियो सूर सपताम ।
हरा अमरेस भो इन्द्र छपवे हसन, ईहगा जगमता तणी नित आम ।।४।।

( रचयिता:- अज्ञात )

अर्थ:—करोड़ और अरब की संपत्ति तो ठीक; किन्तु यदि इसके हाथ रिद्धि सिद्धि भी पड़ जाय, तो उसे भी ( उदारता के कारण ) व्यय करने की इच्छा रखता है । ( इसी प्रकार ) खरब और महापद्म की संपत्ति भी व्यय करते हुए उसे नहीं अखरती । राणा जगतसिंह तो अमित धन-राशि याचकों को सदा देता रहता है ।

हाथी और भूमि देने में क्या आश्चर्य है, ( जब कि यह ) राज्यासन देने में भी नहीं डरता है ? इस समय यह महाराणा कर्ण का पुत्र जगतसिंह, सुमेरु और लङ्का के भी कवि गणों को प्रेमपूर्वक देने की इच्छा रखता है ।

पृथ्वी की क्या बात ? यह सुयश का इच्छुक शिशोदिया राणा, देवताओं का स्थान स्वर्ग और मणिधारी सर्पों का स्थान पाताल भी देने की इच्छा रखता है । इसके पास निषेध ( मना ) करने के लिए निषेध है ( नहीं के लिए नहीं है ) ।

ब्रह्मा हंस, विष्णु गरुड़, शिव, नदी, सूर्य श्वेताश्व और इन्द्र, हाथी को इसलिए छिपाये रखते हैं कि, यदि यह सब अमर के पौत्र ( जगतसिंह ) के हाथ चढ़ गये, तो उन्हें भी यह कवियों को दे देगा। ऐसी आशा है।

## [३७] उदार होने के लिये अन्य राजाओं को राणा जगतसिंह ( प्रथम ) का उपदेश—

गीत ( छोटा साणोर )

दाखे इम राण जगो देसोतां, कैलपुरो जाणियां कल।
तिम तिम भेलो कियो सँमद तो, जिम २ खारो थयो जल ॥१॥
आखे जग माणंग आहड़ो, देसवतां ऊवरे दियो।
जलनिध कियो घणो भेलो जिण, थियो अमीव अथाग थियो ॥२॥
कान तणो जंपै अनिकारां, चाह जगो उवारे चित।
कड़वो हुवे एकठों कींधा, वविया मीठो हुवे वित ॥३॥
नर-नर-वै सामद दिस निरखो, हूवे संचिये हलाहल।
जो अंबर बरसे जहि जोवो, जग पाले करे अमृत जल ॥४॥

( रचयिताः—जोगीदास ( राव ) कुवांरिया )

अर्थः—केलपुर के अधिपति ( मेवाड़-राणा ) जगतसिंह ( कीर्ति को ) जानने वाले हैं। वह देशाधिपों से कहते हैं कि समुद्र जैसे २ जल-संग्रह करता है, वैसे ही यह खारा हो जाता है। अर्थात् धन-संचय करना बुरा है।

उदार चित्त आहड़ा-नरेश जगतसिंह राजाओं को कहता है कि, धन अक्षय्य तब होता है, जब उसे ( दान में ) दे दिया जाय! समुद्र ने जल अधिक इकट्ठा किया और जब वह परमार्थ में देने लगा, तब वह जल वृद्धि पाता हुआ ( बादल बनकर ) संसार के लिए अमृत-तुल्य होगया।

महाराणा कर्णसिंह का पुत्र उदारचित्त ( जगतसिंह ), दान देने की इच्छा रखते हुए कृपाणों से कहता है कि, समुद्र की तरह संग्रह करते रहने पर ( तो )

वह वित्त कटु ( हलाहल ) हो जाता है, लेकिन देने से वही धन मधुर ( यश-रूप में अमृत-तुल्य ) हो जाता है।

नर और नारियों से महाराणा कहता है कि, तुम्हें समुद्र की ओर देखना चाहिये। ( समुद्र से कुछ सीखना चाहिये )। अधिक जल संग्रह करने से वह जहर बन जाता है और परमार्थ में देने से वही जल बादल बनकर बरसता हुआ संसार का पोषण करने के कारण अमृत बन जाता है।

## [३८] महाराणा जगतसिंह ( प्रथम ) की शिव से तुलना

गीत ( सुपखरो )

हले पीठांण पछट्टां धार कट्टां जो बानास हत्थां,
तास भोज गङ्गा पै उपट्टा धार तेम।
भालता बसेत गणा भड़ा थट्टां धार भामै,
जगत्तेस राण आदि जटाधार जेम ॥१॥

नैम भ्रू अरेस क्रोध प्राजलै हूँतास नेत्र,
भले तेज अद्रवास उदेग्राम भूप।
आभा जटा जूट सीस धारंता पेखियो आज,
राणो अप्रमेव जोध महादेव रूप ॥२॥

जेण दीठ सुधा बाण नले तार केस जाणि,
तेण सू कवेस आणि धने सतरीख।
दट्ठ धांण दाणवा ज्यों अेवा की समथ्थां डोहे,
सोहे मेदपाट नाथ पीनाकी सरीख ॥३॥

बाधंमरा सींघ–पीठ आरोहे विमाण बाज,
राज भामे बांण पास अद्रजा रहेस।

जोध बाण-कुसंमां ज्यों आपुणा दनेस जाणे,
मोड राजेसुरां राण साक्षात महेस ॥४॥
हुआ अस कलाधारी दीवाण अनादि हूँत,
जो धाम संभ नंद सुई जोति जूप ।
जुगां केक्र अस्ये कहूँ जोग साभि थयो जटी,
भोग काजे सोम रूप जगत्तेस भूप ॥५॥

( रचयिता:—अज्ञात )

अर्थ:—जब वह मुसलमानों पर हाथ में खडग लेकर प्रहार करता हुआ मार-काट करता है, तो उसकी खड्गधार का प्रवाह ही गङ्गा-प्रवाह बन जाता है और गण-समूह के समान उसके विशेष सामन्तों को देख कर यही कहा जाता है कि, राणा जगतसिंह जटाधारी शिव के समान हैं।

नियम जिसके अटल हैं, शत्रुओं पर क्रोध करना ही जिसका वन्हि-दृग है, जो उत्तम तेजयुक्त है और जिसका निवास स्थान उदयपुर कैलाश पर्वत की तरह है, ( फिर यही नहीं ) जिसकी कांति भी शिव के समान है। यह सब देखकर कहना पड़ता है कि, महान् वीर राणा वास्तव में महादेव का ही स्वरूप है।

जिसकी दृष्टि ही सुधा है, खींचा हुआ धनुष ही चन्द्रमा है, जो कुबेर के समान कवियों को ला ला कर समीप बसाता है और जो दुष्टों को मारकर राक्षस-तुल्य बलवानों को भी नष्ट कर देता है, ( आदि उपर्युक्त गुणों से ) मेवाड़ राणा ( जगतसिंह ) वास्तव में पिनाकी के समान ही सुशोभित होते हैं।

जिसके सिंहासन, विमान और घोड़ों के साज व्याघ्र चर्म से सुशोभित हैं, गिरिजा के समान ही जिसके वामपार्श्व में राज-महिषी रहती है और शाही योद्धा, जिसके आगे कुसुम-पाणि ( कामदेव ) के समान हैं ( कुपित दृष्टि से ही शत्रु कामदेव की तरह जल मरते हैं ) वह राजाओं का सिरमोर महा राणा (जगतसिंह ) महेश के समान ही जान पड़ते हैं।

भगवान एकलिंग ( शिव ) के दीवान अनादिकाल उसी से ( शिव ) की आंशिक कला को धारण करते आये हैं, उनके यहां उत्पन्न होने वाले राजकुमार भी शिवपुत्र कार्तिकेय अथवा गणेश की तरह कांतिमान हुए हैं, यही कारण है कि राणा जगतसिंह भी कितनेही युगों तक योग साधना करते रहे और शिव स्वरूप माने गये हैं। कवि कहताहै कि राणा जगतसिंह शिव की तरह योग-साधना में भी रत रहता है, उसी प्रकार सुखोपभोग, ऐश्वर्य संपन्नता में चन्द्रमा के समान है।

## [३९] महाराणा जगतसिंह (प्रथम) का इन्द्र से व्यतिरेक

गीत ( बड़ा साणोर )

कसा तंडव कूड़ा करे प्रीत दाखे कसूं तन कसूं गरब कर करे तोरा ।
तांहरा धणी सूँ हले नहँ हेक तल, मांहरा धणी री मींढ मोरा ॥१॥
सहंडी कसूं तांडव करे गरां सर, नवे नध वरसणो तही नव नेह ।
छहे इन्द्र दाखवे हेक रत छोलतो, छहै रत वहै जगराज अण छेह ॥२॥
चीतवे कसूं गरदाँ चडे भ्रमंग-चर, मरल कर कसूं दीनर सुणावै ।
माकुरे वरसणा तणी जोवत सही, ऊमरे वरसणा नथि मींढ आवै ॥३॥
ताहंरा तन तणी हेक न मंडै त्रखा, वड़ा अंद करे चहुँ पाम वरखा ।
कीजिये मोरजू आज जगपत किये, सेवगर आपरा आप सरखा ॥४॥

( रचयिताः- अज्ञात )

अर्थः—हे मयूर ! तू क्यों व्यर्थ नाच रहा है ? मेघ और तेरी प्रीति का क्या मूल्य है, जो जरा सी बात पर घमण्ड करके इतना फूल रहा है ? ( क्योंकि ) तेरा स्वामी ( मेघ ), मेरे स्वामी ( राणा जगतसिंह ) की बराबरी तिल मात्र भी नहीं कर सकता ।

हे शिखंडी ( मयूर ) ! पर्वत-श्रृंग पर चढ़ कर तेरा तांडव-नृत्य करना व्यर्थ है। तेरा प्रेमी नव निधि बरसाने वाला नहीं है। तेरा स्वामी ( इन्द्र ) तो

छहों ऋतुओं में केवल एक ( वर्षा ) ऋतु में ही उमंग पर आता है; परन्तु हमारा स्वामी राणा जगतसिंह छहों ऋतुओं में अपार दान-वर्षा करता है ।

हे सर्प-भक्षक ( मयूर ) ! तू पहाड़ पर चढ़ कर क्या देखता है ( विचार करता है ) ? सीधे सादे दीन वचन क्यों सुनाता है ( सुन तो )—ऊसर जमीन पर बरसने वाला ( अर्थात् मूर्ख ) तेरा स्वामी मेघ, दान में घोड़े देने वाले ( राणा जगतसिंह ) की समानता नहीं कर सकता ।

हे मयूर ! चारों ओर वर्षा करता हुआ इन्द्र भी तेरी काया की ( आंतरिक ) प्यास नहीं बुझा सकता ! ( मैं तो समझता हूं ) ऐसे का आश्रित होना व्यर्थ है। मयूर भी होना है, तो राणा जगतसिंहके भू-भागका ही होना सौभाग्य की बात है , क्यों यह अपने सेवकों को भी अपने समान ही वैभव शाली कर देता है। ( यह गुण इन्द्र और मेघ में नहीं है )।

## [४०] स्वाभिमानी महाराणा जगतसिंह (प्रथम)

गीत ( छोटा साणोर )

हट लागो साह नमावण हारो, मारो जद नमियो संसार ।
पत चगतां हूँता हिंदूपत, जगपत कीदो नहीं जुहार ।।१।।
जण भुज सरम हिंदुआ जाणे, राणो खत्रियां धरम रतो ।
दस सँहसों राखे यक दावो, पतसाहां सूं दुओ पतो ।।२।।
जोगण-नगर उदैपुर जोड़े, स्वामीधुर साबूत बहै ।
सुरताणां नहँ नमै सीस वद, राणा ओल खुरम रहै ।।३।।
दस दस नृपत नमाया दूजा, ओरँग साह जसे अवियाट ।
चगतां फेल हुआं चीतोड़ा, कुंनड कदेन लागे काट ।।४।।

( रचयिताः— अज्ञात )

अर्थः—

सबों को झुका देने वाले बादशाह के हठ पकड़ लेने पर सब ( उसके आगे ) झुक गये, परन्तु हिन्दू-पति राणा जगतसिंह ने उस मुसलमान बाद-

शाह (शाहजहां) से कभी भी सलाम नहीं किया ।

राणा जगतसिंह के बाहु--बल पर हिन्दुओं की लज्जा (प्रतिष्ठा) का भार था, वह क्षात्र धर्म में अनुरक्त था (इस उपरान्त) । वह दस हजार गांवों (मेवाड़) का अधिपति, दूसरे ही राणा प्रताप के समान था, जिसने बादशाह से वैसा ही स्वाभिमान का दावा रखा ।

दिल्लीश्वर से उदयपुर--अधिपति (मेवाड़-राणा) ने कन्धे से कन्धा भिड़ाया और बहादुरी रूपी रथ की धुरा के बांये ओर रह कर बराबरी से उसे (रथ को) खींचते रहे (बराबरी से लड़ते रहे)। यह सप्रमाण-सिद्ध है कि, शिशोदिया--नरेश बादशाहों के आगे कभी भी नहीं झुके, बल्कि उलटे शाहजादा खुर्रम ही इस राणा वंश की शरण में आया ।

दूसरों की तो बात ही क्या, परन्तु धर्म-द्रोही बादशाह औरंगजेब के द्वारा दसों दिशाओं के राजाओं को शत्रुता करके—नत-मस्तक कर दिये जाने पर भी, जो चित्तौड़--राज--वंश तपाये हुए (खरे) स्वर्ण (कुन्दन) तुल्य हैं, उन्हें कभी भी कलंक नहीं लग सका ।

## [४१] स्वाभिमानी राणा जगतसिंह (प्रथम)

गीत (छोटा साणोर)

अवर देस देसोत पुरवार करे एकठा, रेभिया मुगले दइव राये ।
हेक सिर नामियो नहीं मांगाहरे, जगेपत साह रे दुवार जाये ॥१॥
झाड़ पहाड़ मेवाड़ रा झाटके, झूझ रूपी हुओ खाग झाले ।
मुगलाणे न ग्यो दिली थाणे मिलण, हिंदवाणे तणो छात हाले ॥२॥
राण रजपूत वट तणो छल राखवा, साहती नाखियो तोड़ सांधो ।
कमर बँध छोड़ कर जोड़ डंडवत करण, कर नरे नामियो नही कांधो । ३॥
जगतसिंघ ऊदैसिंघ अमरसिंघ जेहवा, छात्रपत केम कुल राह छांड़े ।
राण सीसोदियो टेक झाल्यां रहे, एक पतसाह सूं कंध आड़े ॥४॥

( रचयिता:-- अज्ञात )

अर्थः--

अपने कुटुम्बियों को इकट्ठा करके सपरिवार अन्य देशों के अधिपतियों ने मुगलों के देवालयों (मस्जिदों) में बांगे दीं, किन्तु एक मात्र राणा सांगा के वंशज जगतसिंह ने बादशाह के द्वार जाकर कभी सिर नहीं झुकाया।

मेवाड़–प्रदेशीय पहाड़ों की झाड़ियों को युद्ध करने योग्य बना कर राणा जगतसिंह खड्ग लिये रण स्थली में डट गया, परन्तु हिन्दुओं का छत्र वह राणा मुगलों के दिल्ली नामक स्थान पर शाह से मिलने कभी नहीं गया।

राणा कर्ण के पुत्र (जगतसिंह) ने राजपूती वट के दाव को रखने के लिए संधि नष्ट कर दी, किन्तु वह बादशाह से नष्ट नहीं हुआ। राणा ने अपने कटि-बन्धन को खोल कर शाही तखत के सामने कंधा कभी नहीं झुकाया।

राणा जगतसिंह, उदयसिंह एवं अमरसिंह जैसे छत्रपति अपनी कुल–मर्यादा कैसे छोड़ सकते हैं? शिशोदिया राणा, तो हमेशा ही अपनी टेक पर दृढ़ रहने वाले होते हैं। ये ही एकमात्र बादशाह के आगे टेढ़ा कंधा कर के रहने वाले हैं।

## [४२] स्वाभिमानी महाराणा जगतसिंह (प्रथम)

गीत (छोटा साणोर)

ऊजदाणां कोड़ उपाव करंतां, उतबँग तणा होय अकाज।
असपत द्वार नमाणा ऊभा, राणा अण आभड़ियल राज ॥१॥
जगड़ पुवीत वड़ा छल जागण–जोत सरूप जही हर–जोत।
छत्र ऊजलो कमल तो छजि, छात्र बियाँ हव लागी छोत ॥२॥
ध्रम –मारग खत्रियाँ खग घोड़े, उतरे अत्र लोपिया अनेक।
क्रित ऊजल दीपे करनावत, एकाकार होवते एक ॥३॥
कलजुग – जुग लागो अनकारां, सेव करे करमेळ सगा।
दाता रां गुर पोहोत्यां दूसण, जाए भेटीया जगा ॥४॥

सीसोदियां माहारूद्र सरमा, कहे सूर ससिवेद कहै ।
राज चरण सेवे राव राजा, राज सरण खित धरम रहै ॥५॥

( रचयिता:- अज्ञात )

अर्थ:—

अन्य राजा-गण जो शाह से लेने की इच्छा रखते हैं, वे करोड़ों उपाय करते हैं, फिरभी उनके मस्तकों का बुरा हाल होता है। वे शाह के द्वार पर झुका दिये जाते हैं। शाह से लोहा लेने वाला महाराणा का मस्तक ही केवल इससे बचा है।

ऐसे महान छल कपट के समय- ज्योति-स्वरूप महाराणा जगतसिंह ही एक ऐसे हैं, जो रुद्र-ज्योति धारण कर जागृत रहने वाले हैं। इन्हीं के सिर पर उज्वल छत्र सुशोभित है। अन्य क्षत्रिय राजाओं को तो शाही छूत ( कलंक ) लग कर ही रही।

धर्म और खड्ग के रास्ते को अन्य कई क्षत्रिय-छोड़ कर चलने लग गये (कुमार्गी बन गये), परन्तु हे महाराणा कर्णसिंह के वंशज ! तेरी ही कीर्ति एक ऐसी रही, जो इस एकाकार के जमाने में भी उज्वल और दीप्तिमान होकर रही।

कलियुग के प्रभाव से सारा संसार मर्यादा रहित होकर तथा शाह के सम्बन्धी कहला कर अन्य क्षत्रिय शाह की सेवा करने से जो दूषित (कलंकित) हो गये हैं, उनका पाप, हे दानवीर राणा जगतसिंह ! तेरे पास पहुंच कर तुझसे भेंट करने पर ही मिट सकता है।

हे शिशोदिया राणा ! तू महारुद्र रूप है। कवि-गण तुझे सूर्य एवं चंद्र-तुल्य मानते हैं। क्षत्रिय राजा एवं धर्म दोनों तेरे चरणों की पूजा करते हैं। क्षात्र-धर्म आप ही के शरण में रहता है।

## [४३] महाराणा जगतसिंह (प्रथम) की बादशाह पर चढ़ाई

गीत ( छोटा साणौर )

पिथराजा जेम धरा पाथर ते, उडिया गिर वर धरव आगे ।
बीजिया वार फेरियो बलिवँत, जवन तणे सिर खाग जगे ॥१॥

राजां जेम दइव गति राणा, खत्र मारग खड़ता खुमाण ।
को मंड बीच नवे खँड काढ़े, खाँडा हेठ छ खँड खुरसांण ॥२॥

गिर वर कोट महर धर गांहे, दांणवां सीस समार दिया ।
वेण तणां जिम करन तणे वलि, किता मांण चक चूर किया ॥३॥

मानधात रवि ग्रहण मेटते, घसण फेरिया मछर घणे ।
एकाणि पई खेड़िया आयो, तूँ माथे पतसाह तणे ॥४॥

( रचयिता:—अज्ञात )

अर्थ:— जिस प्रकार पृथुराजा ने पृथ्वी को समतल करते समय पृथ्वी से पहाड़ों को नष्ट कर दिया, उसी प्रकार बलवान राणा जगतसिंह ने भी मुसलमान ( बादशाह ) पर दूसरी बार खड्ग चलाया ( युद्ध किया )।

प्राचीन राजाओं के समान ही दैवी-गति रखते हुए उस खुमाण वंशज नें क्षात्र पथ पर जब पैर दिया ( युद्धार्थ बढ़ा ), तब उसने कितने ही नवखण्ड के वीरों को पराजित कर अपने कमान के बीच से निकाल दिया और कितने ही छहों खण्ड के मुसलमानों को अपने खड्ग तले से निकाल दिया। अर्थात् हार मंजूर कर लेना स्वीकृत कराया।

जिस प्रकार राजा वेणु के पुत्र ( पृथु ) ने पहाड़-रूपी दीवारों के शिखरों को पृथ्वी पर ढहा दिया और दानवों के सिर पर प्रहार किया, उसी प्रकार राणा कर्ण के बलवानपुत्र ( जगतसिंह ) नें भी कितने ही शत्रुओं के मान को चूर २ कर दिया।

उस मान्धाता और सूर्य के समान महाराणा ने ग्रहण ( शाही घेरे ) को नष्ट करते हुए संघर्ष-कर्त्ताओं को विशेष मस्ती के साथ मोड़ दिया और बादशाह के सिर पर पंगुर ( विषमगति वाली ) सेना को बढ़ाता हुआ चढ़ आया।

## [४४] महाराणा जगतसिंह (प्रथम) का सैन्य प्रयाण

गीत ( छोटा साणोर )

सँग हेकण थिआ जगा सीसोदा, मुदोवां जूजुई मुहाड़
दल मेंगल पथ बहे पछम दस, मन तो सुरत धजा मेवाड़ ॥१॥
तो चलणा सूं करन समो भ्रम, घट वहतां दस आप घर।
वां से आतम रहै (विलगती), पट भर वाली चितह पर ॥२॥
सुन्दर अने सरीर तणे सँग, पलते को परवस पगा।
पाछी वले मलेवां पावे, जीव पताका जेम जगा ॥३॥

( रचयिता:—अज्ञात )

अर्थ:— हे शिशोदिया-राणा जगतसिंह! ( युद्ध के लिये ) प्रयाण करते समय हाथियों एवं उन पर फहराती हुई पताकाओं का साथ तो हो गया; परन्तु उन मदमस्त हाथियों एवं पताकाओं के मुँह पृथक-२ रास्ते पर दिखलाई देते हैं। गज-सेना पश्चिम-दिशा ( सिंध आदि मुसलमान देशों ) में चलती है; किन्तु पताकाओं की मनोरुचि मेवाड़ की ओर है। ( हाथियों का मुँह पश्चिम दिशा में है तथा पवन के उल्टे प्रवाह से पीछे अर्थात् मेवाड़ की ओर पताकाओं के मुँह हैं )।

हे राणा कर्ण की भ्रांति देने वाले ( राणा जगतसिंह )! तेरे प्रस्थान करने से शरीरधारी हाथी तो चल पड़े; परन्तु तेरी पताकाओं की आत्मा तेरे घर ( मेवाड़ ) की ओर इस प्रकार लगी हुई है, जैसे सिंह आगे की ओर चलता हुआ स्वभाव से ही पीछे दृष्टि डालता है।

हे जगतसिंह! देहधारी ( हाथियों ) का संग पा कर उनके साथ विहरती हुई श्री सुन्दर पताकाएँ इस प्रकार परवश ( मेवाड़ की ओर मुँह किये हुए ) दिखाई देती हैं, जैसे आत्मा शरीर से पुनः मिलने की इच्छुक हो।

## [४५] महाराणा राजसिंह ※ ( प्रथम ) का मालपुरा लूटना

गीत ( छोटा सागौर )

जोगणपुर जपे चित्रगढ़ जाणे,
घणे पूर–तन बिरद घणो ।
मोती कहे दली मालपुरो,
तो तोड़ीयो मोनक–तणो ॥१॥

तो सूं कमण रमे-तरवारां,
कांकण बंध लोह में–कमाड़ ।
ऊजल अमल नाक–रो ओपम,
मोती पोहो लेग्यो मेवाड़ ॥२॥

मुरड़ी घणी ऊथली मांणी,
ताणी माड़ी अभे–तण ।
लागा जिते मगार लूंबते,
रंग रातो मातो रयण ॥३॥

तोड़े हार चीर जगता तण,
चंदक कांच छोड़े चिकण ।
मोड़े करग मांहरा मद कर,
कोड़े लेग्यो लोड़ कण ॥४॥

चकता तकत कहे चीतोड़ा,
साम काम करन हर सूर ।
मार अतार न दीनों मोनूं,
जार मार दे गयो जरूर ॥५॥

( रचयिता:- अज्ञात )

अर्थः— योगिनीपुर ( दिल्ली-नगर ) चित्तौड़ से कहता है कि, हे चित्तौड़ ! बहुत से शत्रों को मार कर तेरे जिस स्वामी ( राणा राजसिंह ) ने विशेष यश कमाया है, उसने मेरे नाक के मोती के समान मालपुरा को तोड़ ( नष्ट कर ) दिया है।

तुझ मेवाड़ से खड्ग का खेल कौन खेल सकता है ? तेरा स्वामी जो लोह-कपाट के समान है, उसने कंकन बाँध ( दुलहा बन ) कर मेरी नासिका के अति पवित्र मुक्ता (मालपुर) को हस्तगत कर लिया है।

अधिक तोड़ मरोड़ कर उथल पुथल करते हुए निर्भयता-पूर्वक रमण करके सिर की साड़ी को खींच कर ( बेइज्जती करके ) युद्ध के रंग में रंगा रहने वाला तेरा राजा झूमते हुए मोती जितने मेरे नाक के थे, उन्हें वह झपट कर ले गया।

पराक्रमी राणा जगतसिंह के मदमत्त पुत्र राजसिंह ने मेरे हार ( वे वीर जो दिल्ली की शोभा बढ़ाने वाले तथा लज्जा रखने वाले थे ) को भी तोड़ फोड़ कर कंचुकी के बंधन भी छुड़ा दिये ( बल, साहस, दृढ़ता को दूर कर दिये )। मेरे हाथों ( वीरों ) को मरोड़ कर प्रसन्नता पूर्वक मुक्ता-अक्षत ( मोतियों ) को तोड़ कर ( लूटकर ) लेगया।

चकताओं ( मुसलमानों ) का तख्त ( दिल्ली ) कहता है कि हे चित्तौड़ ! तेरा स्वामी, कृष्ण के समान काम ( रूकमणी की तरह रूपनगर की राजकुमारी का वरण ) करने वाला, जो राणा कर्णसिंह का बहादुर पौत्र है, उसने जार ( उप पति ) बन कर इस प्रकार मर्दन किया ( तहस नहस किया अथवा काम-सुख दिया ) जैसा कभी भी मेरे पति ( बादशाह ) ने नहीं किया।

---

❀ टिप्पणीः—इस महाराणा का जन्म वि०सं० १६८६ में हुआ और १७०६ में राजगद्दी पर बैठा। यह रूपनगर ( किशनगढ़ ) की राजकुमारी, जिसका ब्याह शाहजादे मोइज्जम ( औरंगजेब के पुत्र ) के साथ होना तय था, को बलपूर्वक विवाह कर लेआया। जजिया न देने पर और जोधपुर के राजा अजीतसिंह को शरण देने के कारण इसका बादशाह के साथ युद्ध हुआ, जिसमें बादशाह की हार हुई। प्रसिद्ध राजसमुद्र झील का निर्माण इसीने कराया। संवत् १७३७ में इसका स्वर्गवास हुआ।

## [४६] औरँगजेब के लिये राणा राजसिंह (प्रथम) का व्याधि बन जाना

गीत ( छोटा साणोर )

बद चूको वैदन जाणे वेद न, ओखद लगे न पीड़ अथाह ।
रात दिवस खटके उर राजो, साजो तेण नहीं पत साह ॥१॥
मालपुरा सारीखो मारे, राणो दिया पर हंस रण ।
भोग सँजोग छोड़ दुख भीनो, ओरँग छीनो रोग अण ॥२॥
खेगां चढ़ चोगान न खेले, वन्न पड़ीयो राज वजोग ।
आंगमणी मीसोदन आवे रोद हिये मन लागो रोग ॥३॥
धूणे सीस न धूणे धज वड़, मारे रीस सोहो मन माँय ।
जगा तणे अम मांद जागवी, जवन तणे घट हूँत न जाय ॥४॥

( रचयिता:— अज्ञात )

अर्थः— बादशाह वैद्यों को कह चुका, लेकिन वे भी उसकी बिमारी को नहीं जान सके, न कोई औषधी ही कारगर ( कामयाब ) हुई । बादशाह की अपार वेदना बढ़ती ही गई । बादशाह स्वस्थ हो ही कैसे सकता था ? ( क्योंकि ) उसके हृदय में तो रात दिन राणा राजसिंह खटकता था ।

मालपुर जैसे नगर पर मार देकर ( आक्रमण कर ) राणा ने विपक्षियों के प्राणों की बलि दे दी । इसी से शाह औरंगजेब को नया रोग होगया और इसी कारण बादशाह के भोग , संयोग और सुख छूट गये । वह दुःख में सन गया ।

वह ( बादशाह ) घोड़े पर चढ़कर मैदान में सैर नहीं करता था । इसके उपरान्त भी उसका राज्य - सुख भी दूर होगया । शिशोदिया - राणा के साथ युद्ध करने में बादशाह से कुछ करते धरते नहीं बनता, यही रोग शाह के हृदय को ध्वस्त करता था ।

वह सिर को हिलाता रहता है, किन्तु उससे खड़ग हिलाते ( चलाते ) नहीं बनता । वह सारा क्रोध मनमें ही रख कर रह जाता है । (इस प्रकार) जगतसिंह के पुत्र ( राणा राजसिंह ने ऐसी बीमारी पैदा करदी, जो कभी भी शाहके शरीर से दूर नहीं हुई ।

## [४७] राणा राजसिंह ( प्रथम ) का औरङ्गजेब पर आतंक

गीत ( छोटा साणौर )

साले मझ दीह रयण मझ साले, अकुलावे पावे दुख अंग ।
खूंद हिये लागो खुमाणां, भालो तूझ तणो अण भंग ॥१॥
साबल हाथ लियां सीसोदा, सुज हिंदवाण चढ़ावण सोह ।
दिल खुद चै अहोनिस दूखै, लागा जिसो अलागो लोह ॥२॥
देवै हिये सेल थारो दह, बेहद खटके पंचवखत ।
लोह जिसो दूखै नहिं लागो, अण लागो दूखत अखत ॥३॥
मांझल मदन हिया चख मांझल, पोढै पल ढाकै पटल ।
अस असवार सेल अणियालो, उर वणिया दीसे अटल ॥४॥
जग–राजड़ा अलग मूंजड़ियो, पंजर कसकै पंजर पसार ।
हाथ न लागे जठै हाड़–खां, साज जलास नहीं संसार ॥५॥

( रचयिता:—अज्ञात )

अर्थः—हे खुमाण वंशज ( राणा राजसिंह ) ! तेरा अभंग भाला शाह के हृदय में अदृश्य रूप से लगा हुआ दिनरात चुभा करता है, जिससे उसका अंग व्याकुल रहता है और दुःख पाता है ।

हे शिशोदिया वीर ! तू हाथ में भाला लिए हुए हिन्दुस्तान के मुख की कांति बढ़ाता है, जिससे रात दिन बादशाह के दिल में तेरा नहीं लगा हुआ भाला भी लगे हुए के समान दुखता है ।

पांचों नमाज पढ़ते वक्त बादशाह के दिल में तेरा भाला बेहद खटकता है और जलन पैदा करता रहता है । लोहा ( शस्त्र ) के लगने पर भी वैसा दुःख नहीं होता, जैसा बिना क्षत किये नहीं लगा हुआ तेरा यह भाला शाह को दुःख दिया करता है ।

घर में सोया हुआ भी शाह जब पलकों के परदों को बन्द कर अपने आंतरिक चक्षु से देखता है, तब उसे हर समय तू घोड़े पर चढ़ा हुआ अनियारा ( सुतीक्ष्ण ) भाला लिए हुए अटल खड़ा दिखाई देता है।

हे जगतसिंह के पुत्र राजसिंह! तेरे दूर के वार से ही शाह का कवच बिंध गया है। उसके शरीर में कसक ( चुभन ) पैदा होगई है। यद्यपि तूने हड्डियों को चूर करने वाले भाले को अपने हाथ से नहीं छुआ, फिर भी शाह का सुसज्जित कवच ( तो ) नहीं के बराबर होगया।

## [४८] महाराणा राजसिंह ( प्रथम ) द्वारा राजसमुद्र का निर्माण

गीत ( बड़ा साणोर )

अगा राण राजेस कमठांण कीधा अकल,
कोड़ जुग लगे नहँ जाय कलिया।
पाल् जोय हेमरा गरब गलिया पहल,
ताल जोय समँदरा गरब टलिया ॥१॥
आणते नीर पाताल् ऊधेड़िया,
कमठ वाराह चा माण कलिया।
सेस गलिया गुमर गङ्गजल् सालुले,
महण परवाह परवाह मलिया ॥२॥
हठ्ठ जोय देव नर नाग भेचक हुआ,
दइव गत जगावत वटो दुनियांण।
सकल ब्रहमंड तणा नीर सांगा हरे,
अकल दरियाव बीच राखिया आण ॥३॥
तणा पाताल् प्रथमाह अम्बर तणा,
खोहण जल राजसर आण खहियो।

एक जलु ब्रहमां कमँडल तणो ऊगर्यो,
रुद्र तण कमँडल जल हेक रहियो ॥४॥
राज सी राण रचियो असो राजसर,
कवि करे ताम वाखाण केहा।

नाभ वालो कमल पार पावे नहीं,
आभ लागां वहे तरङ्ग अेहा ॥५॥

कोड़ तेंतीस जिथ इन्द्र क्रीड़ा करैं,
उभे रामा रमा झले आणंद।
सोहियो राज करतो असो राजसर,
ससोवण हुआ नहँ जण सासंद ॥६॥

( रचयिता - अज्ञात )

अर्थः—महाराणा राजसिंह ने ऐसी अमिट कारीगरी से काम कराया ( तालाब बँधवाया ), जो करोड़ों युगों तक नष्ट होने जैसा नहीं है। इसकी ( श्वेत पत्थरों की उज्वल और ऊँची ) पाल को देखते ही सर्व प्रथम ( तो ) हिमालय का गर्व गल गया ( दूर होगया ) और फिर तालाब को देखते ही समुद्र का अभिमान झड़ गया (नष्ट होगया)।

पाताल को फोड़कर जब इसमें वहां का पानी मिलाने लगे, तब कच्छप और वाराह भी ( किसी तरह की ) रोक नहीं सके। वे भी अभिमान रहित होगये। शेष नाग भी रोक नहीं सका, उसका भी अभिमान दूर होगया। गङ्गा-जल ने भी इस तालाब के जल को प्रणाम किया ( पूज्य माना )। इसका जल-प्रवाह देखकर ( तो ) समुद्र-प्रवाह भी निरादृत होगया।

इस ( तालाब के निर्माण ) कार्य में राणा को जुटा हुआ देखकर दुनियां उसे ( राणा को ) देव तुल्य कहने लगी। राणा सांगा के वंशज ( राजसिंह ) ने इस अमिट तालाब में समस्त ब्रह्माण्ड का जल लाकर मिला दिया।

इस राजसमुद्र के एक कोने में पाताल लोक, भू लोक और नभ लोका (स्वर्ग) जल खिसक (बह) कर आ मिला। बस बचा है, तो केवल ब्रह्मा और रुद्र का कमण्डल का जल ही, जो उसमें मिल नहीं सका है।

राणा राजसिंह ने ऐसे राजसमुद्र तालाब का निर्माण किया, जिसकी प्रशंसा कौन कवि कर सकता है? इसकी लहरें आकाश को छूती हैं। उन तरंगों का पार स्वयं कमल-नाभ (विष्णु) भी नहीं कर पा सकते (उन्हें शङ्का है कि कहीं मेरा नाभि स्थित कमल बह न जाय।

जिसमें तैंतीस करोड़ देवता और इन्द्र क्रीड़ा किया करते हैं तथा जिसमें लक्ष्मी-सहित स्वयं विष्णु आनन्द पूर्वक स्नान करते हैं, ऐसा यह राजसमुद्र गूंजता हुआ सुशोभित है, जिसकी समानता समुद्र भी नहीं कर पाते।

## बादशाह के साथ महाराणा जयसिंह* का विरोध

गीत (छोटा साणौर)

बेहूँ हेकण सांकल् सीह न बांधे, दा एक होए न रात दन।
मिले न जल् जुजुआ मोता हल्, मीर हमीरां तणा मन ॥१॥
ओ॰ सेर आप बल् ओपे, ठवे न मीत गरँम एक ठाह।
दीसे जग ऊपर जल् हल्ता, पाणी–हड दहूँए पतिसाह ॥२॥
हरि ससिहरि, मरि हेक न सासे, एम गजपत असपत आबेट।
जलद तणा जल् जेम ज्जुआ, जल् ज्–जुये रहे जग जेठ ॥३॥
देवां एम जेसिंघदे, सुत राजड़ राणा समराथ।
सांगा तणा काथ नहँ मांसे, भेला हुए होए भाराथ ॥४॥

(रचयिता:—अज्ञात)

*टिप्पणी:—यह महाराणा राजसिंह का पुत्र था, जो १६३७ में राजगद्दी पर बैठा। पूरे एक वर्ष भर तो इसने भी अपने पिता की भांति शाही सेना से टक्कर ली; परन्तु बाद में संधि करली। विश्व-विख्यात जयसमुद्र झील का निर्माण इसी राणा ने करवाया। इसका स्वर्गवास सं. १७९५ में हुआ।

अर्थः—( जिस प्रकार ) एक सांकल से दो सिंह नहीं बँध सकते. रात और दिन एक नहीं हो सकते और सामान्य पानी और मोतियों का पानी (कांति ) एक-से नहीं माने जाते, ( ठीक उसी प्रकार ) महाराणा हमीर-वंशज ( जयसिंह ) और मुसलमान—बादशाह के मन भी एक नहीं हो पाते ( दोनों के बीच भारी विरोध है )।

सब सिंह शोभा पाते हैं, किन्तु वे ( राणा और बादशाह ) अपने २ बल पर हीं अलग २ शोभा पाते हैं। जिस प्रकार शीतलता और गरमी एक जगह टिक नहीं पाती, उसी तरह दोनों ( राणा और बादशाह ) मिल नहीं पाते हैं। ये दोनों अपने २ वंश की कांति से संसार पर अलग २ चमकते हुए दिखाई देते हैं।

जिस प्रकार सिंह और शशक में एक-सा बल नहीं होता, उसी तरह गजा-रोही राणा तथा बादशाह में स्वाभाविक विरोध है। दोनों एक दूसरे पर उबलते रहते हैं। वास्तव में वर्षा-ऋतु की वर्षा एवं बेमौसमी ज्येष्ठ की वर्षा अपना २ अस्तित्व अलग ही रखती है।

राणा राजसिंह का पुत्र जयसिंह वास्तव में देवता-तुल्य, सामर्थ्यवान है। इसने राणा सांगा की जो हिन्दुस्तान से मुगलों को मिटा देने की प्रतिज्ञा थी, उसे भंग नहीं होने दिया और यही कारण रहा कि, ( जहां कहीं ) जब ये ( राणा और बादशाह ) मिल जाते, वहीं युद्ध छिड़ जाता था।

## [५०] महाराणा जयसिंह द्वारा हिन्दुत्व की रक्षा

गीत

आयो अवरंग असी चत आणे, रोद सरब करवा यक राह ।
रूकां पांण खत्री ध्रम राखै, जण पल में राखो जैसाह ॥१॥
कलम हिन्दुवां एक करे वा, सेन लियां आयो सुरताण ।
खत्रियां दुआं बेच दीदो खत, खत कारण लड़ियो खूमाण ॥२॥
केसव तो राहा दो कीदी, दुनियां में नहँ मटे दुअे ।

खग तोले कसियो खूमाणे, हिन्दु तुरक न एक हुए ॥३॥
कर सुन्नत काजी गुर करतो, पलियो धरां खाग बल पेख ।
राजड़ सुतन न हूँयो राणो, उसरां सुरां करंतो एक ॥४॥

( रचयिताः—'आशिया, माना' [मदारवालों का पूर्वज] )

अर्थः— बादशाह औरंगजेब ने यह सोचकर चढ़ाई की कि, सबों को एक रास्ते लाकर मुसलमान बना दिया जाय। उस समय राणा जयसिंह ने तलवार के बल पर क्षत्रिय धर्म रखा ( बचाया ) ।

मुसलमान और हिंदुओं को एक करने के लिये जब सेना लेकर शाह ( औरंगजेब ) चढ़ आया, तब दूसरे क्षत्रियों ने तो क्षत्रियत्व बेच दिया; परन्तु खुमाण वंशज ( जयसिंह ) क्षत्रियत्व के लिये लड़ा

तलवार उठाकर उस खुमाण-वंशज ( राणा ) ने कहा कि, ईश्वर ने दो रास्ते ( दीन, मजहब ) बना दिये हैं । संसार में उन दो मज़हब के रास्तों को एक कोई नहीं कर सकता । ( इसी लिये ) हिंदू और तुर्क एक नहीं हो सकते ।

जब शाह तलवार के बल पर हिन्दुओं की सुन्नत (मुसलमानी) करवाता और काज़ियों को उनके गुरू बनवाता हुआ पृथ्वी पर चला, तब यदि राणा ( राजसिंह ) का पुत्र जयसिंह नहीं होता, तो वह ( बादशाह ) देव दानवों को भी मुसलमान करके छोड़ता ।

## [५१] महाराणा अमरसिंह * (द्वितीय) द्वारा अमर–महल का निर्माण

गीत

बोह ऊंछा करे आब सूं बातां, गर–सुर–राज बणाया ।
कारवां गोख भरोखां जाली, वाड़ी महल बणाया ॥१॥
पाटंबर वीछायत पड़दा, जणरो तास जरीका ।
अमरे राण किया अम्बा रथ, सरवर समेर सरीका ॥२॥

जड़ की नीम सेस सर जाड़ी, जुगां अनँत नहँ जोखा ।
जैसावत रचिया जुग जाहर, अमर-वलास अनोखा ॥३॥
जगत वचे रमणीक जयगां, अपछर देखण आवे ।
नाम धाम थारा दोनू नृप, जातां जुगां न जावे ॥४॥

( रचयिता:- अज्ञात )

अर्थः— ये महल इतने ऊँचे हैं मानों बादलों से बातें करते हैं। यही कारण है कि यह स्वर्गीय पर्वत के समान माने गये हैं। झरोखो, जालियों आदि से सजा कर (बगीचियां लगा कर) इन बाड़ी महलों का निर्माण हुआ है।

जिनकी सजावट में रेशमी बिछायतें और जरताम (जरीन) परदे लगाये गये हैं। हे महाराणा अमरसिंह ! यह इमारत आपने बनवाई है, वह साक्षात सुमेरु शिखर के समान है।

मानो इनकी ( महलों ) नींव शेष-नाग के सिर तक चली गई है। यही कारण है कि, कई युगों तक इसके गिरने का खतरा नहीं रहा है। हे राणा जयसिंह के पुत्र ( अमर ) ! इस अनोखे 'अमर-विलास' महल की रचना संसार-प्रसिद्ध की है।

संसार भर में यही ( एक ) रमणीय है। इसी लिये इन्हें देखने के लिये स्वयं अप्सरायें भी आयँगी, ऐसा अनुमान है। हे नरेश ! यह महल और इसके साथ २ तेरे नाम की ख्याति कितने ही युगों के बीत जाने पर भी नहीं मिटने की है।

---

* टिप्पणीः—वि. सं. १७५५ में यह राजगद्दी पर बैठा। जिस समय औरंगजेब दक्षिण की लड़ाइयों में व्यस्त था, तब महाराणा ने उस अवसर से लाभ उठाना चाहा। औरंगजेब की मृत्यु होने पर उसके पुत्रों के बीच युद्ध हुआ, जिसमें इसने आजमखां का पक्ष लिया, किन्तु वह मारा गया। बहादुरशाह ने तख्त पर बैठ कर आमेर तथा जोधपुर के राज्यों को जब्त कर लिया, तब महाराणा ने अपनी सेना द्वारा उनकी सहायता कर राज्य वापस दिलाया। सं० १७६७ में इसका स्वर्गवास हुआ।

* इस महल को 'बाड़ीमहल'—नाम से भी अभिहित करते हैं। उदयपुर में इसका निर्माण हुआ है, जो आज भी सुरक्षित है। 'शिव-विलास' भी इसी का नाम है।

## [५२] महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) की खड्ग-प्रशंसा

गीत (छोटा साणौर)

पतसाहां हूँत अमेल परठियां, भरियो सुरत अनत वे भाड़ ।
असँबर अमर तणो ऊघाड़ो, छत्रधारियां तणो ओछाड़ ॥१॥
अनमी-कंध वधे असपतियां, बाद आद लागियो बहे ।
नागधुहा वालो खग नागो, राई तन ढाकियां रहे ॥२॥
रजवट पाण खत्रि-ध्रम राखण, असुर-पछाह-धरो-धर अंस ।
आंचा राण रूक ऊत्राणो, बीटाणो सोहो खत्री वंश ॥३॥
हातां लिया जमावत हीसल, गेगरियो भरियो गमर ।
खूंन खड्ग रहियो बच खापां, ऊकढियो दीठो अमर ॥४॥

( रचयिताः—अज्ञात )

अर्थः—बादशाह के विरुद्ध चलने वाला वीरता-रूपी वैभव से परिपूर्ण जो राणा अमरसिंह का खड्ग है, वह स्वयं ढँका हुआ नहीं होते हुए भी अन्य छत्र धारण करने वालों को ढकने वाला है ।

जिन बादशाहों के कंधे नहीं झुकने वाले हैं, उन कंधों को झुका देने वाला एवं शुरू से ही दुश्मनों से युद्धवाद ( लड़ाई झगड़ा ) करने वाला जो नागद्रह-अधिपति (महाराणा) का खड्ग है, नग्न होते हुए भी राजाओं को ढकने (इज्जत बनी रखने) वाला है ।

राजस पने की पान (तेज) धारण कर क्षात्र-धर्म को रखने वाला एवं पर्वत-श्रेणियों के नाशक वज्र के अंश से उत्पन्न होकर यवन-संहारक जो राणा के हाथ में रहने वाला खड्ग है वह नँगा होते हुए भी समस्त क्षत्रिय-वंशों को ढंके हुए है ।

हे राणा जयसिंह के पुत्र ! ( जब ) तू इस खड्ग को हाथ में धारण करता है ( तब ) यह गहरे अभिमान से भरा हुआ दिखाई देता है । हे राणा

अमर ! विपत्तियों के खड्ग (तो) म्यान में ही रहते हैं किन्तु केवल तेरा ही खड्ग ऐसा है, जो हमेशा ही दुश्मनों के लिए म्यान से बाहर रहता है।

## [५३] महाराणा अमर (द्वितीय) द्वारा चारण कवि को बारहट (राज कवि) की उपाधि

गीत * (बड़ा साणोर)

अभँग साख मस सूर जुग च्यार राखण अचड़,
छीजवण दल दखणाण छातां।
यल तणो हुँतां अभ सम राणे अमर,
पोल रो दियो अभसेस पातां ॥१॥

इन्द्र अवतार दातार गुरु अरेहण,
सुदन संसार गुण करण सीलो।
चत्रगढ़ तणो टीलो कमल चढ़ंतां,
ताकुआं दियो दरबार टीलो ॥२॥

राजां दलद करो गुण रीभयल,
ऊधरा गजां भड़जा उराणे।
देस मेवाड़ चा तलक हायता दिया,
रेणवा पोलचा तलक राणे ॥३॥

---

*टिप्पणी:—इस गीत से स्पष्ट होता है कि, महाराणा अमर (द्वितीय) के समय से ही चारण कवि, महाराणा के राज-कवि माने गये हैं, इससे पूर्व अयोध्या से साथ में आये हुए बंदीजन (राव) सुमन्त्र (जो भगवान रामचन्द्र के समय था) की संतान जो इस समय चीकलवास [तहसील गिरवा मेवाड़] में स्थित है, वह इस राजवंश के प्राचीन राज-कवि थे। यों तो महाराणा भीमसिंह के बाद भी उपर्युक्त सुमन्त्र की संतान का संबंध इस राज-वंश से रहा है। ऐसा चीकलवास के मंदिर में लगे हुए लेख से सिद्ध होता है।

अका फाटा धका सांमल विया,
चका चहुँए डँकाकीत चढ़वी ।
गढ़पती तपो अमरेस चत्रकोट गढ़,
गढ़ तणी पोल सुज तपो गढ़वी ॥४॥

( रचयिता:-- बारहट "चतर्भुज" सोदा )

अर्थ:- चन्द्र और सूर्य इस बात के साक्षी हैं कि यह राजवंश चारों युगों में स्थिर एवं अखण्ड रहने वाला है। राणा अमर भी इसी वंश के हैं, जो दक्षिण-सेना के प्रमुख वर्ग के दिल को कष्ट देने वाला है। इस राणा का पुण्य-अभिषेक ( राज्याभिषेक ) होने पर इसने चारण-कवि को अपने प्रतोली का अभिषेक किया (द्वार पर बैठने वाला अर्थात् राज-कवि बनाया)।

यह राणा इन्द्र का अवतार है, यह सीमा से परे ( भी ) अधिक उदारता रखता है। संसार के अच्छे दिन हैं कि, यह प्रत्येक की भलाई और पोषण कर्ता नरेश हुआ। इसके मस्तक पर चित्तौड़ का तिलक ( राज्याभिषेक ) हुआ और इसने अपने कवि के मस्तक पर "बारहठ" (राज-कवि) पद का तिलक किया।

*यह ........................ गुणों पर रीझने वाला और युद्ध में ऊँचे हाथी घोड़े बढ़ाने वाला है। इसके भाल पर मेवाड़ का तिलक हुआ और इसने अपनी प्रतोलिका का तिलक कवि के भाल पर किया।

*........................ पृथ्वी पर चारों ओर डंके की चोट की तरह इसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। यह दुर्गाधिप राणा अमर, दुर्ग चित्तौड़ पर अक्षुण्ण रूप से तपता रहे ( देदीप्यमान रहे ) और उसकी प्रतोली पर यह गढ़वी ( चारण-कवि ) भी अक्षुण्ण रूप से चमकता रहे।

---

*टिप्पणी:- मूल पाठ में ही लेख दोष होने से अर्थ की अस्पष्टता रही है इसी कारण से तृतीय एवं चतुर्थ गीतांश में उन शब्दों का अर्थ नहीं दिया गया है।

## [५४] महाराणा संग्रामसिंह* (द्वितीय) का खड्ग-ताप

गीत (बड़ा साणोर)

महर प्राजळे तुरँग चतुरंग खुरसाण री,
तांण री पांण सींचाण री तूप ।
महण सुरतांण री धके छाती मही,
रांण री खड्ग-बड़वा-अगन रूप ॥१॥

धड़ हड़े जगे मलगे अवर धियागां,
कलम धड़ दगे जरदेत काळी ।
हुए अण चूक जिम सांह महमँद हिये,
ऊक जिम रूक सगराम वाळी ॥२॥

मीर बँध-चमर रा तिमर रा तिमंगळ,
पळे नहँ समर रा जिके पेराक ।
जवन दळ भमर रा तणे उर मँझ जळे,
अमर रा तणी जळ दहण ऐराक ॥३॥

हुवाचे भभक सीसोद उजबक हिये,
दुजड़ नर धोम पावक तणो दाह ।
ऊपटे नीर धर जा दनह ऊझळे,
समँद मुरजाद लोपे नहीं साह ॥४॥

(रचयिताः- अज्ञात)

---

*टिप्पणी:- यह महाराणा वि० सं० १७६७ में राजगादी पर बैठा। प्रारम्भ में ही "रणबाज" खां की सेना से मेवाड़ी सेना का मुकाबला हो गया, जिसमें रणबाजखां मारा गया और पुर-मंडल के क्षेत्र पर राणा का स्थाई अधिकार हो गया। यह अपने समय का बुद्धिमान शासक माना जाता था। जयपुर, जोधपुर के महाराजा भी इसका सम्मान करते थे। डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि पर भी इसका ही पूर्ण अधिकार था। वि० सं० १७९० में इसका निधन हुआ।

अर्थः—महाराणा संग्रामसिंह का खड्ग, शाह की अश्वारोही सेना के सिर पर प्रज्वलित होकर सींचान ( बाज ) की तरह तेजी के साथ टूट पड़ता है और शाह के समुद्र-रूपी हृदय में वड़वाग्नि के समान धधक उठता है।

कालिका-सी वह ( तलवार ); जरीन म्यान से धड़ाके के साथ प्रज्वलित होकर युद्ध करते हुए मुसलमानों के शरीर तथा हृदय को जला देती है और इस प्रकार अचूक वार करती है, मानो उल्कापात हुआ हो ! यह तलवार वही है, जो पूर्ववर्ती महाराणा सांगा के हाथों में रह महमूद ( मालवी ) पर आघात करती थी।

ऐसे मीर जिन पर चमर चलते हैं; जो घोर तम-सिंधु के मत्स्य हैं; युद्ध-सिंधु को पार करने वाले भी जिन्हें पहुँच नहीं पाते हैं और जो यवन-सिंधु के भ्रमर - समान हैं; उन वीरों के हृदय में भी महाराणा अमरसिंह पुत्र (संग्राम सिंह ) की तलवार पानी ( शत्रुओं के नूर ) को जलादेने वाली है, (चमकती-रहती है )

शिशोदिया राणा की खड्ग-ज्वाल उजबक ( बलवान् मुसलमानों ) के हृदय को भी स्वाहा करदेती है और यह अग्नि के समान जलाने वाली होकर भी निर्धूम है, जिस दिन वह अपना पानी ( कांति ) उमड़ कर बरसाने लगती है, उस दिन भी समुद्र के समान वह अपनी मर्यादा नहीं लाँघती (सबल शत्रु का ही संहार करती है, निर्बलों का नहीं )।

## [५५] महाराणा संग्रामसिंह ( द्वितीय ) का युद्ध-कौशल

गीत ( बड़ा साणोर )

अजर घोम गोलां गजर सार केमर उडै,
ऊमड़े समर तूटे खळां आव।
तठे सगरांम अमरेस तण तांहरा,
पग हुवे मेर-गिर हात पँखराव ॥१॥
घोर हठ रांण ऊडांण असहां घड़ां,
अभँग अण डोल अवसाण अगराज।

हुवां घमसाण खूमाण थारा हुवे,
राण ओयण–गिरँद पाण खगराज ॥२॥
सुजड़ अधकाव खग करड़ परवाह सुख,
दूठ अमरड़ सत्रां होम देहा।
उरड़ घमचाल होतां वणे आपरा,
अनड़ पै राज तस गुरूड़ एहा ॥३॥
नव त्रर तजे त्रर–आंट–जाणे नगा,
आंट नव त्रंम कर जाण ओले।
अछर उलटी मुड़े मेर भय ईखतां,
भुजँग पटके जटी तगम भोले ॥४॥

( रचयिता:- गिरधर 'आशिया" )

युद्ध-भूमि में जब तोपों आदि की आवाज के साथ २ खूब धूँआ उड़ता है, गोले चलते हैं, लोहे के बने हथियारों से आग झड़ती है, लड़ाई में जूझते हुए दुश्मनों की आयु क्षीण होती है ( मरते हैं ), तब हे राणा अमरसिंह ( द्वितीय ) के पुत्र संग्रामसिंह ! तेरे पैर सुमेरु पर्वत के समान अडिग हो जाते हैं और हाथ पक्षिराज गरुड़ की तरह सवेग चलने लगते हैं ( अडिग होकर दुश्मन की काट-छांट शुरु कर देता है )।

हे दूसरे रावल खुम्माण ! रण-वाद्य जब जोरों से बजने लगते हैं, सेना में घोड़े उड़ने लगते हैं, तब तुम सावधानी से आगे बढ़ते हुए अभंग ( पूर्ण रूप से ) और अडिग वीर दिखाई पड़ते हो और जब युद्ध छिड़ जाता है, तब तुम लोह-पर्वत-से अटल हो जाते हो और तुम्हारे हाथ गरुड़ की तरह चंचल हो जाते हैं।

अधिक प्रहार करते हुए खड्ग द्वारा विपक्षियों का सत्यानाश करने में ही तुम्हें सुख होता है। रण में पीठ नहीं दिखाकर दुश्मन के शरीर को तुम

स्वाहा कर देते हो। ( हे राणा ) जब विशेष आक्रमण के साथ घमासान युद्ध होता है, तब तुम्हारे पैर पहाड़ की तरह अडिग और हाथ गरुड़ के सदृश चंचल हो जाते हैं।

हे महाराणा! युद्ध में तुम सुमेरु पर्वत के समान दिखाई देते हो। यही कारण है कि, रण-क्षेत्र में वीरों का वरण करने के लिए आई हुई अप्सरायें तुम्हें अपने स्वामी इन्द्र के शत्रु पर्वत, समझ कर वापस (खाली हाथ) लौट जाती हैं। इसी प्रकार युद्ध-भूमि में आये हुए शिव के अंगों के सर्प भी खिसक जाते हैं, क्योंकि वे अपने नवकुल के विरोधी गरुड़ की तरह तुम्हारी भुजाओं को देखकर चकित (ठगे) रह जाते हैं।

## [५६] महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के प्रति

गीत ( छोटा साणोर )

बैसतां तखत संग्राम महाबल, चहुवैं कूटां कीति चवी।
कुंजर पाति बांधिया केवी, कूम्भा थला चाढ़िया कवी ॥१॥
मँडता तिलक राण मेवाड़ा, मझिया भला मेगलां साज।
बांधे खोभ रीझ बैसाया, रिम कदमां होदां कविराज ॥२॥
अमर समो भ्रम जगड़ अभिनिमा, वणते तखत नखत वड वार।
विहुवे थोक हांथियां वणिया, अरि लंगर जसकर असवार ॥३॥
गुर गहलोत आवतां गादी, छिवियो समँद हिंदवां छात।
दुरदां तणा कराया दहुँव, पांवा रिसण किलावां पात ॥४॥
वड़ पोहो सदा सिंगासण वणतैं, रोस रीझ सिंधु रा सिरे।
खल नीसाम घामतां खावैं, कवि चढ़िया आसीस करे ॥५॥

( रचयिता:—"आशिया पत्ता" )

अर्थः— हे पराक्रमी राणा संग्रामसिंह! आपके सिंहासनारूढ़ होते ही चारों दिशाओं में आपका यशोगान इस प्रकार होने लगा!

एक ओर आपने हाथियों के पैरों से कबालियां ( मुसलमानों ) को बँधवाया, दूसरी ओर कवि-गण को हाथियों के मस्तक पर चढ़ाया।

हे राणा ! राज्य-तिलक होते ही आपने हाथियों को भली प्रकार से सजा कर एक ओर तो मारे क्रोध के मुसलमानों को उनके पैरों से बाँध दिया, दूसरी ओर प्रसन्न होकर कवियों को हांदे (अम्बा बाड़ी) पर बिठाया।

हे महाराणा ! आप अपने पूर्वज राणा अमर की भांति देने वाले हैं और मानों दूसरे जगतसिंह के समान हैं। आपने अच्छे नक्षत्रों में सिंहासन पर बैठ कर दोनों प्रकार से हाथियों की शोभा बढ़ा दी है। एक ओर हाथियों की श्रृंखला से शत्रु भकड़ दिये गये हैं तथा दूसरी ओर कीर्ति-विधायक कवियों को हाथी पर बिठला दिये हैं।

हे हिन्दुओं के छत्र महाराणा ! आप गुहिलोत-शाखा ( वंश ) के प्रमुख हैं। आपने गद्दी पर बैठते ही समुद्र के समान तूफान पर आकर हाथियों को दोनों तरह से सुशोभित कर दिया है एक ओर शत्रुओं को हाथियों के पैरों में डाल दिया है, दूसरी ओर कवियों को हाथी के मस्तक पर बिठा दिया है।

आज की यह पहर हिंदुओं के लिये विशेष हितकर है, जिसमें आप सिंहासनारूढ़ होकर हाथियों द्वारा क्रोध और कृपा दोनों प्रकट कर सके (देखिये) एक ओर, तो दुश्मन हाथियों के पैरों से बाँधे जाने पर घसीटाते हुए निःश्वास डाल रहे हैं और दूसरी ओर कवि गण हाथियों पर चढ़ कर आपको आशीर्वाद दे रहे हैं।

## [५७] अतुलनीय राणा संग्रामसिंह (द्वितीय)

गीत

ग्रहां हेक राजा सिधां हेक राजा अँगज, सरह अग्यारह दिशा राज साजां।
सूर सिव दोय राजा फबे राण सम, गण मम तीसरो न को राजा ॥१॥
प्रहारे तिमर विख जजर आकां पिये, घूमरे सत्रहरां धजर घावे।

भासँकर सँकर सगराम न्रप सरोभर, अबर छत्रधर न को नजर आवे ॥२॥

जोतधर ऊमावर नगर सह जोवतां, बहर तप हेक दिल गहर बीजो।

बंबहर सेलगुर अमर तण बरोबर, तुले नहँ सरोतर भूप तीजो ॥३॥

तीन लोका महीं जोड़ सांगण तणी, एक रवि दुवो जटधर अरोड़ो।

नलज नवरोज मेले जिके नारियाँ, जिकां छत्र-धारियाँ किसो जोड़ो ॥४॥

( रचयिताः– अज्ञात )

अर्थः—एक ( तो ) ग्रहों का राजा ( सूर्य ) और दूसरा सिद्धों का राजा ( शिव ) है, दोनों अखण्ड हैं। एक रथ युक्त है, तो दूसरा एकादश रूद्रों से युक्त दिग्गजों के तुल्य है। ऐसे सूर्य और शिव ही राणा की बराबरी कर सकते हैं, तीसरा कोई भी राजा बराबरी नहीं कर सकता।

एक अन्धकार को नष्ट करने वाले तथा दूसरे जहर को पीने वाले हैं। दोनों आडम्बर युक्त भूमते हुए शत्रुओं को नष्ट करने वाले हैं। ऐसे भास्कर और शंकर ही राणा संग्रामसिंह की बराबरी कर सकते हैं। इसकी बराबरी करने वाला कोई भी अन्य छत्रधारी राजा दिखाई नहीं देता।

संपूर्ण संसार देख सकता है कि, एक ज्योति-( प्रकाश ) धर है, और दूसरा उमावर ( उमा-पति ) है। एक विशेष तेजोमय है दूसरा गंभीर हृदय वाला है। इस प्रकार के सूर्य और शिव ही राणा अमर ( द्वितीय ) के वंशज ( पुत्र ) की बराबरी कर सकते हैं। तीसरा अन्य कोई भी राजा इनकी समानता नहीं कर सकता।

तीनों लोक में राणा संग्रामसिंह की बराबरी पर एक ( तो ) सूर्य और दूसरा जटाधारी निर्विघ्न शिव दोनों ही ( शोभा पाते हैं ) फबते हैं। जो निर्लज्ज राजा अपनी स्त्रियों को नोरोजा के मेले में भेजते हैं, वे छत्रधारी, राणा की समता कैसे कर सकते हैं ?

## [५८] राणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के समय जयपुर–जोधपुर–राजाओं का उदयपुर में आना–

गीत ( छोटा साणौर )

नकलँक घर आदूनमो नागध्रह, अममर पूगिया कवण अर ।
पाप उतारण आया पांवा, कूरँभ कमँधज मतो कर ॥१॥
सांगो राण हिंदुओ सूरज, जपे पृथी माँई ज्यूं जाप ।
बाप री हत्या उतारण बेटो, बेटा तणी उतारण बाप ॥२॥
अजमत तूज धनो अमरावत, धन चत्रगढ़ मेवाड़ धरा ।
जेमी हर वगता राजड़ियो, पांवा लागा पाप परा ॥३॥
अठ सठ तीरथ जसो उदैपुर, हुई धाम ज्यां काम हिया ।
दोनूं वंस तणा दस–से हँसे, कलँक मेट नकलंक किया ॥४॥

( रचयिताः-अज्ञात )

अर्थः– हे नागद्रहेश्वर ( मेवाड़-राणा ) ! आपका घर (वंश) शुरू से निष्कलंक है । आपके खड्ग की समता ( युद्ध में ) कोई भी दुश्मन नहीं कर सकता । *कूर्म और *राठाड़ जैसे राजाओं ने भी पाप को दूर करने की मंत्रणा कर आपके चरणों में आश्रय लिया है ।

हे राणा संग्रामसिंह ! सारा संसार आपको हिन्दु–सूर्य मानकर ईश्वर के तुल्य आपका जप करता है । यही कारण है कि, दोनों (कूर्म और राठौर) राजा, पितृ–वध एवं पुत्र–वध–पाप को धोने के लिये ही आप तक आये हैं ।

---

*सन्दर्भ— जयपुर अरु जोधाणपति, दोनों ही थाप उथाप ।
कूरम मार्‌यो डीकरो, कमँधज मार्‌यो बाप ॥

उक्त दोहे के आधार पर महाराजा सवाई जयसिंह आमेर (जयपुर) पर पुत्र–वध एवं जोधपुर महाराजा अभयसिंह के छोटे भाई बख्त सिंह (नागोर के राजा) पर पितृ–वध का दोषारोपण सिद्ध होता है । लोक-प्रचलित कथनानुसार—"अभयसिंह के संकेत से बख्तसिंह ने पिता का वध किया"—सिद्ध होता है ।

हे राणा अमरसिंह ( द्वितीय ) के पुत्र ! आज तेरी बुद्धि को, तेरे दुर्ग चित्तौड़ को और तेरी मेवाड़–भूमि को धन्य है, जो जयसिंह और बख्तसिंह जैसे पापी राजाओं के भी पाप तेरे चरण छूने मात्र से दूर हो गये हैं।

राजाओं के लिये यह उदयपुर अड़सठ तीर्थों के समान हो गया है। दस हजार गाँवों ( मेवाड़ ) के अधिश्वर हे राणा ! आपने उन दोनों राज–वंशों के कलंक को दूर कर उन्हें निष्कलंक कर दिया है।

## [५६] राणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के यहां डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ एवं रामपुरा– नरेशों का सेवक रूप में रहना

गीत (छोटा साणौर)

गढपत चीतोड़ मोड़ गढपतियां, सांके मन ढीली सुरताण।
रावल् रावत, राव ओलगे, राज भाग–धन सांगा राण ॥१॥
राजड़ हग रूप राजवियां, गाढ़ां गुरू नमो गहलोत।
आवे जुवार करण अमरावत, दोउवें जगत चहूँ देसोत ॥२॥
गंम, वसन, गोपाल, सांग रज धर, पतियाँ अेखठा धड़ा।
जाय खड़ा अँबकास रहे जे, खत्री जे डोडियाँ खड़ा ॥३॥
सांगा राण हिंदुआ सूरज, मुजरा कर दोऊ राह मले।
गर पुर वांम पुरा देवगरा, रामपुरा पोहो–पोय रूले ॥४॥

( रचयिता:– पत्ता 'आशिया )

अर्थ:— हे चित्तौड़ दुर्ग के स्वामी ! आप अन्य दुर्गाधिपों के सिरमौर हो। आपको देखकर दिल्लीश्वर भी मन में संकुचित होता है। हे राणा संग्राम ! आपके भाग्य अच्छे हैं जो, रावल, रावत और राव उपाधिधारी राजा आपके दर्शनों की इच्छा करते हैं।

हे राणा राजसिंह (प्रथम) के वंशज ! हे गुहिलोत-वंशी वीर !! हे राणा अमर (द्वितीय) के पुत्र !!! आप राजाओं की शोभा एवं दृढ़ वीरों के गुरू हो।

यही कारण है कि, चारों देशाधिप ( डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा रामपुरा के राजा ) दोनों समय ( सुबह और शाम ) आपके आगे सिर झुकाने ( प्रणाम करने ) आते हैं।

जो अन्य राजाओं से सहमत होकर (बादशाह की सेवामें रहना स्वीकार करने वाले ) रामसिंह ( डूंगरपुर नरेश ), किशनसिंह (बांसवाड़ा), गोपालसिंह (देवलिया प्रतापगढ़ का शासक) और संग्रामसिंह (रामपुरा नरेश्वर) शाही दरबार में खड़े रहते थे, वे आज तेरी ड्योढी (द्वार) पर खड़े हैं।

हे हिन्दु-सूर्य महाराणा संग्रामसिंह ! आपके सामने सिर झुकाते हुए डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ ( देवलिया ) और रामपुरा के नरेश कमल–पुष्प के समान खिल पड़ते हैं और वे तय्यार होकर वीरता एवं स्वामि-धर्म के पथपर चलते हुए दिखाई देते हैं।

## [६०] महाराणा जगतसिंह* (द्वितीय) के बल पर भविष्य–कल्पना

गीत § ( छोटा साणौर )

जगम दूसरो राजड़ जाणो, तूटे यण समिये तुरकाणो ।  
राज तो करसी जगतो राणो, होसी रोद दली हिंदवाणो ॥१॥

---

* टिप्पणी:- यह राणा वि० सं० १७९० में राजगद्दी पर बैठा। पेशवा बाजी-राव के उदयपुर आने पर जब इसने बड़ा सम्मान किया, तब पेशवा ने नीचे (फर्श पर) बैठ कर ही नम्रता प्रकट की। 'हुरड़ा' नामक स्थान पर राजस्थान के सब नरेशों ने मिलकर एक संगठन साधा, जिसमें इसे अगुवा बनाया। इसीके समय में आमेर के राजा सवाई जयसिंह के मरने पर उदयपुर के भानजे माधवसिंह को गद्दी दिलाने के विषय में भारी संघर्ष हुआ। अन्त में सं० १८०८ में इसकी मृत्यु होगई।

§ जब मुस्लिम साम्राज्य डांवाडोल होने लग गया था, मरहट्टों की ताकत दिनों दिन बढ़ती जारही थी तब, हुरडा ( मेवाड़ ) स्थान पर राज–वीरों ने संगठित होकर अपना अगुवा राणा जगतसिंह ( द्वितीय ) को बनाते हुए जो भविष्य की कल्पना की है, उसी का इस गीत में उल्लेख हुआ है।

भौंरी-रूप त्रिया सुमल्ली, नागद्रहा सूं प्रीत नवल्ली ।
करसी हींदु छोड़ कवल्ली, ढोल धुरातां होसी ढल्ली ॥२॥
कदे हुए नहँ आगम कूड़ो, जी बामण हथ ले वो जूड़ो ।
चीरविया पहरावो चूड़ो, राण करै वर दल्ली रूड़ो ॥३॥
आयो असुर गलण रो अंको, सत्तरखांन बहोत्तर संको ।
पहरो गागर सूथण पंको, वर करसी जोगण-पुर वंको ॥४॥
खागां वल साँगावत खोसी, रोद मके जा बैठा रोसी ।
जाती थकी सकल नर जोसी, हतणापुर पटराणी होसी ॥५॥
सीसोदाँ बाजी नत साजी, तुरकाणे बाजी नहँ ताजी ।
कवियण कहे सुणो गन्ह काजी, राणा सू जोगण-पुर राजी ॥६॥
पंडव नगर तणी हर पालो, मेछ बिना पालखियाँ मालो ।
झोली खपर हाथ में झालो, होय फकीर मका दिस हालो ॥७॥

( रचयिताः—अज्ञात )

अर्थः— महाराणा जगतसिंह को दूसरा ही राजसिंह ( प्रथम ) समझना चाहिये, क्योंकि, अब तुर्क—साम्राज्य का खात्मा होगा, दिल्ली पर इसीका शासन होगा और मुस्लिम शासन के स्थान पर अब हिन्दू—साम्राज्य स्थापित होगा ।

यह दिल्ली अधिक सुन्दर स्त्री के रूप में है, इसने अब नागद्रहेश्वर ( मेवाड़-राणा ) से नई प्रीति करली है । अब यह काबुलियों (मुसलमानों) को छोड़ कर हिन्दू—राजा को अपना ( पति ) बनायेगी । (देखना) यह स्वयं ही नक्कारे पर डंके की चोट देती हुई हिन्दू राजा की होकर रहेगी ।

यह भविष्य—कथन कभी असत्य होने वाला नहीं है । ( इसलिये ) हे ब्राह्मणों ! इस (दिल्ली) का पाणिग्रहण (मेवाड़-राणा से) करवा के अच्छा चीरा हुआ चूड़ा पहना दो, क्यों कि यह स्त्री — स्वरूपा दिल्ली महाराणा को अपना सुन्दर दुलहा बनायेगी ।

मुसलमानों के नष्ट होने का अब समय आयगा, यह देखकर सित्तर-ख्रान 'और बहत्तर उमराव शंकित हो उठे हैं। इसलिए पजामा निकाल फेंको और इसे लहँगा पहना दो, क्योंकि यह अब बांके महाराणा को अपना स्वामी बनायेगी।

अब राणा, खड्ग-बल से इसका उपभोग करेगा। मुसलमान, इसे (दिल्ली को) गंवाकर मक्का में बैठकर रोयेंगे। यह (दिल्ली) अब मुसलमानों के घर से राणा के घर जाती हुई दिखाई देगा। अब यह हस्तिनापुर (दिल्ली) महाराणा की पटरानी (मुख्य राजधानी) होकर रहेगी।

शिशोदिया राणा का हमेशा के लिये दाव लगने वाला है और तुर्कों का दाव सदाके लिये अब नहीं लगने वाला है। इस लिये हे काजियों! कवि जन अब यह कल्पना करते हैं कि, मह राणा से अब योगिनीपुर (दिल्ली) रीझ गई है।

हे मुसलमानों! पांडवों द्वारा बनाये गये, इस (दिल्ली) नगर की स्मृति केवल अब तो मन में लिये हुए, बिना मियाना के पैदल ही इर्द गिर्द घूमा करो और टुकड़े मांगने के लिये झोली, खप्पर हाथ में उठाकर फकीरों का रूप लिये मक्का का रास्ता पकड़ो!

## [६१] महाराणा प्रतापसिंह * (द्वितीय) का जोधपुर में विवाह

गीत ( छोटा सागोर )

आरख सुरिअंद हमीर अवनमा, रुद्र अंमी सुतन जग राज।
कुंवर प्रताप परणांता कीदो, अनड़ न पाप कमधजां आज ॥१॥
मेटियो दुँग मीह लीणो मोटै, दुनी प्रभत मग आंक दिओ
आगे यां उमगं आवडियो, कोट जको म प्रतीत कियो ॥२॥
पत चीतोड़ कसे कांकण पग, दुनी राखियो नाम उड।
सांगा बीजा कीयो म मोभत, गांगा बीजा तणो गढ़ ॥३॥

---

* टिप्पणी:— यह राणा वि. स. १८०८ मे राजगद्दी पर बैठा। इसका निधन १८१० में हुआ। इसके अल्पकालीन शासन में मराठों का उपद्रव बना रहा।

मरधर-गर उपगार मानियो, बड़ो खत्रि ध्रम लाख बरीस ।
प्रतपो कुंवर घणा दन पातल, अम जोधणां दिये आसीस ॥४॥

( रचयिता:-पीरा 'आशिया' )

अर्थ:—इन्द्र की बराबरी करने वाले नव्य-हम्मीर रुद्र-अंशी राणा जगतसिंह के पुत्र स्वाभिमानी वीर युवराज प्रताप ने शादी करके राठौर-कुल को निष्कलंक कर दिया ।

दुर्ग पर जो कलंक लगा हुआ था, उसे दूर कर दुगुना ऐश्वर्य देते हुए उस ( दुर्ग ) के सिर आंक ( एहसान ) मढ़ दिया । वह पहले मुसलमानों के संपर्क से अपवित्र हो गया, ( शादी करके ) फिर से उसे पवित्र कर दिया ।

इस चित्तौड़ के युवराज ने अपने पैर में कंकण ( विवाह-सूचक सूत्र ) बाँधकर संसार में अपना नाम दृढ़ ( अटल ) कर दिया । इसी कारण मानों दूसरे ही राणा साँगा ने गांगा के दुर्ग की शोभा बढ़ा दी ।

मरु-प्रदेश का दुर्ग इस व्यवहार से इसका एहसान मानता है और राठौर-वंश का यह जोधपुर राज्य भी आशीर्वाद देता है कि, कुमार प्रतापसिंह का क्षात्र-धर्म लाखां वर्ष तक बढ़ा करे । यह राजकुमार भी चिरायु हों !

## [६२] महाराणा अरिसिंह ❋ (अड़सी) विपत्तियों का सिरदर्द

गीत ( सुपंखरा )

तूंही लखां जूथ धींगेल्ले बरूथ रोल्ले तेग बांधी ।
अरसिंह तूंही भुजा तोले आसमाण ॥
लड़े तूंही चाड़ा हिन्दु आण-भाण लोह-लाड़ा ।
खड़े तूंही आड़ा दली साह सूं खुमाण ॥१॥
भेले खलां थट्टां तूंही बीजलां वकट्टा-भूप ।
मेल्ले वीर कट्टां तूंही त्रणा-धू मानेत ॥

अपट्टा प्रथी सूं तूंही जगा वाला अमानेय ।
वहे ऊ प्रवट्टा तूंही ढलीसा वानेत ॥२॥
राजंदा सभूल–घड़ा गंजे तूही सूल–रूपी ।
मत्रां धूल भंज तूंही जड़ामूल सूंत ॥
मभल्ले केवाण तूही राणा खाथां सारदूल ।
हले माथा मूल तूंही आसुराण हूँत ॥३॥
( रचयिता:—अज्ञात )

अर्थ:—हे खुम्माण वंशज हिन्दु-सूर्य राणा अरिसिंह ( अड़सी ) ! तू ही लाखों शत्रुओं के समूह को नष्ट करने के लिये अपने-सैन्य-समूह को बढ़ाने और तलवार कसने वाला, भुजाओं पर आसमान को उठाने वाला, स्वस्थ लड़ने वाला, लोहे पर काबू करने वाला और दिल्ली के बादशाह से विपरीत चलने वाला है ।

हे राणा जगतसिंह के वंशज विकट नरेश ! अपनी तलवार द्वारा शत्रु-समूह को तू ही उजाड़ने वाला, शत्रु-वीरों को काट कर धूल में मिलाने वाला, पृथ्वी पर निःसीम स्वाभिमान रखने वाला एवं हठ पूर्वक दिल्लीश्वर से ऊट पटांग रहने वाला है ।

हे सिंह-तुल्य वंश वाले राणा ! विरोधी राजाओं के लिये शूलरूपी होकर उनकी भूलों से सजी हुई गज-सेना को दबाने वाला, बड़े २ शत्रुओं को जड़मूल से नष्ट करने वाला, तलवार उठाने वाला और मुसलमानों के लिये सिर दर्द पैदा करने वाला ( केवल एक ) तू ही है ।

---

* टिप्पणी:— यह राणा वि- सं- १८१७ में राजगद्दी पर बैठा । इसके १२ वर्षीय शासन काल में सामंतों में विद्रोह-ज्वाला सुलगती रही, जिससे बहुत क्षति हुई । महाराणा राजसिंह ( द्वितीय ) की मृत्यु- बाद उत्पन्न पुत्र रत्नसिंह का माधवराव सिंधिया द्वारा पक्ष लेने पर उज्जैन में युद्ध हुआ । विरोधी सरदार फ्रेन्च समरू को भी चढ़ा लाये । सिंधीया ने उदयपुर पर घेरा डाल दिया वि.सं. १८२८ में बूंदी के हाड़ाराव अजित सिंह द्वारा इसकी मृत्यु हो गई ।

## [१३] युरोपियन 'समरू' से महाराणा अरिसिंह (अड़सी) का बालेसमां (या बड़लियाम) ग्राम के निकट युद्ध

गीत ( बड़ा सारणोर )

भजे प्रबल सज चुरसरा नाग समरू मरम, राग सुण खुरसरा दईव रायो ।
तेज पुंज राण रण सुरस रा तो रहूँ, उरसरा अनल पँख जेम आयो ॥१॥
भीम चंपी धरा बरंग वाले समें, धींठमल फरँग वाले करी धींग ।
असे छक हूँत आयो जठे अचाणक, सबल—खग तठे राण अरीसींघ ॥२॥
गयँद समरू तणा बीज चाला गजब खीज भाला चखां धक सुणत खेम ।
बजाई प्रिथीमल अताला वेग हूँ, आवियो नहँग वाला वहँग एम ॥३॥
अनल पँख जगावत तणी भपटां अगां, उमर दल भगा सामट अकूता ।
कुरँगी फहरँगी तणा रचियो कलह, हार बचियो दइव जोग हूँता ॥४॥

( रचयिता:—अज्ञात )

अर्थ:—जब प्रबल वीर 'समरू' मदाकुल हाथी की तरह बढ़ा, तब उसके उस नीरस राग को सुनकर इन्द्र-तुल्य तेज-पुंज राणा, रण-रस युक्त (झूमता हुआ) अनलपंख * (पक्षि विशेष) की तरह उड़ता हुआ उस (समरू) पर झपटा ।

जब उस धृष्ट फिरंगी 'समरू' ने 'बालेसमा' गाँव के निकट भू भाग को दबाया और हाथी के समान उत्पात मचाने लगा, तब राणा अरसी इस प्रकार क्रोध में आकर वहां आ पहुँचा जैसे बलवान कोई अनलपक्षी आया हो ।

*टिप्पणी:—इसके विषय में केवल सुनाजाता है कि, यह कदली-वन के इर्द-गिर्द आकाश में ही घूमता रहता है । यह भीमकाय होता है । यह आकाश में उड़ता हुआ हाथियों को उठा ले जाता है ( जैसे किसी पखेरू को बाज ) और वहीं खा पी कर समाप्त करदेता है । इसका आहार केवल हाथी ही है ।

हाथी रूपी 'समरू' के पट्टा ( खड्ग ) का घुमाना गजब का ही था, जिसे देख कर खुमाण-वंशज पृथ्वी-पति' राणा ( अरिसिंह ) क्रोधाग्नि से धधकता और आँखों से ज्वाला बरसाता हुआ निर्भय होकर अनलपक्षी के पंखों की तरह अपने हाथों को चलाता हुआ आ पहुँचा।

राणा जगतसिंह के वंशज अनलपक्षी के समान अरिसिंह की झपट के आगे आती हुई असंख्य सेना भी सिखुड़ कर भाग गई और साथ ही वह फिरंगी भी भाग खड़ा हुआ, जो युद्ध करने के लिये हाथी के समान बन कर आया था। यह भगवान की कृपा रही कि, वह हार कर भी बच गया।

## [६४] राणा अरिसिंह के विरोधी कृत्रिम राणा रत्नसिंह के विषय में चेतावनी

गीत ( छोटा साणोर )

जण (रो) जनम जको कुण जाणे, दाइ कमी जणाय दियो ।
सतवादियां मा पुरसां सूरां, कठेई फतूरां राज कियो ॥१॥
कूड़ा तोत थि (या) गढ़ कोटे, भाजगिया खल सकल भणे ।
माठी वात पंथ मत लागो, ताय छल जागो नमख तणे ॥२॥
जमकत घणी हुवो जेतावत, उरजणिये दल थंभ उपाव ।
जण अगजीत लियो जोधाणो, नारायण हक रीझ नयाव ॥३॥
हसन हराम हुवा हित हेवे, श्रीवर से दां कियां सँघार ।
रजवट लूण धरम आराधो, मत मंथा माधो सरदार ॥४॥
कायत तखत मले तप कीधां, अवतारी उपजे सब अंम ।
हिन्दुवो भांण राण कहवावे, वडावरद सीसोदा वंस ॥५॥
खाधो लूण उजालो खत्रियाँ, वाधो जनमन खोवो वाद ।
माम धरम राखो मत माधो, औ ( बातां ) रहसी जुग आद ॥६॥
लाखां तणा.........ल लीधा, तमलीया कर जदी तदी ।

हूंसा नमख हराम न होजे, बदन न जोवे चवे बदी ॥७॥

जगपत जांम स्यांम सांचो जुग, काचां भड़ा न कीजे काम ।
नाम फतूर कहै जणने नर, राणा पणो न देसी राम ॥८॥

अड़पायतां अचल ऊबरसी, मरसी बुध राखो मरदार ।
अवचल राज भुगतसी अरसी, करसी न्याव अमल करतार ॥९॥

( रचयिताः– नंदलाल 'भादा' )

अर्थः— जिस ( रत्नसिंह ) का पैदा होना भी कोई नहीं जानता है और यह भी मालूम नहीं है कि, उसे किस दाई ने जन्म दिलाया ? हे सत्यवादी पुरुषों एवं सामन्तों ! आप सब यह जानते ही हैं कि, फरेबी ( बनावटी ) राजा ने कहीं कभी राज्य किया है ?

कोटे में भी ऐसा तोत ( षड्यंत्र ) रचा गया था, परन्तु कहा जाता है कि, अन्त में उन षड्यंत्रकारियों को नष्ट होना ही पड़ा। इस लिये (हे सामंतों !) असत् चर्चा के रास्ते न लगो ( असत्य का पक्ष न लो ) ! यह छद्म ( कपट ) तो निमेषमात्र ही टिक पायेगा।

जिस प्रकार जेतावत वंशीय ( प्रतापसिंह, अजीतसिंह के विरूद्ध महाराज गजसिंह के पौत्र इन्द्रसिंह से मिल कर ) कृतघ्न हो गया, परन्तु राठौड़ अर्जुनसिंह द्वारा सैन्य बल-संग्रह के प्रयत्न से ( यद्यपि अर्जुनसिंह मारा गया फिर भी) अजीतसिंह ने जोधपुर को फिर अधीन कर लिया। ईश्वर की उस पर ऐसी कृपा होना न्याय संगत ही है।

( और देखिये )—हरामी हसन खाँ ( हुसेनअली खाँ, शाह की आज्ञा से जोधपुर को अधीन करने) स्वार्थ में लग गया; किन्तु ईश्वर ने उन मुसलमानों का अन्त में नाश कर ही दिया (और अजीतसिंह जोधपुर का स्वामी हुआ ही)। इस लिये हे वीरों ! रजवट ( क्षत्रियत्व ) और नमक हलालीपन ( स्वामि भक्तित्व ) की उपासना करते रहो और सत्य का साथ देने का ही प्रयत्न करो।

नूरधारी ( पराक्रमी ) को ही तपस्या करने से तख्त मिलता है। ऐसे अवतारी पुरुष सब ईश्वरीय अंशों को लेकर ही उत्पन्न होते हैं। इसी लिये राणा हिन्दु-सूर्य कहलाता है। ऐसे विशेष विरुद शशोदिया-वंश को ही फबते हैं।

हे क्षत्रियों ! राणा का नमक जो तुमने खाया है, उसे साथक कर दो। अपना सारा जन्म वृथा न गवाँओ ( व्यर्थ ही प्रपचों में मत पड़ो )। स्वामी-धर्म की रक्षा और सत्य का साधन करो। ऐसी ख्याति ही संसार में आदि से अमर रहती है।

लाखों मनुष्यों द्वारा ··· ·· प्राप्त किया। जब कभी आपत्ति का सामना करना पड़ा, तब राणा की आज्ञा शिरोधार्य की। एक दूसरे की देखादेखी नमक हराम नहीं होना चाहिये। जैसा पहले से कहते आये वैसा मैं भी कहता हूं ( कि ) ऐसे ( नमक हरामियों ) का मुँह कोई नहीं देखता।

जगतसिंह का वंशज ही मेवाड़ेश्वर है और यह सच्चा है ( न्याय परायण है )। अतः हे सामन्तों ! तुम्हें कायरों जैसा काम नहीं करना चाहिये। जो ( रत्नसिंह ) मनुष्यों की जबान पर फरेब ( बनावटी ) कहा गया है, उसे ईश्वर कभी भी राणा-पद नहीं देगा, यह निश्चय है।

यह राणा झगड़ालुओं से पूर्ण रूप से बच जायगा। इसलिये हे सरदारों, तुम अपने हृदय में अच्छी सीधी बुद्धि को स्थान दो ( व्यर्थ ही उलझो मत )। यह राणा अरिसिंह ( अड़सी द्वितीय ) मेवाड़ का निश्चय राज्य करेगा और ईश्वर इसके पक्ष में वैसा ही ठीक न्याय कर बतायेगा।

## [६५] राणा अरिसिंह के साहस का वर्णन

गीत ( छोटा साणोर )

धरा धूजिरे पलटे ओहा, खागां मँडिया खेल खरा।
ते तिण वार बजाई ताली, हेकण हात हमीर हरा ॥१॥
असती नर वारै ओमलिया, चलिया अनड़ हुआ धक चाल।
मेक भुजा मांझी मेवाड़ा, तो विखाकुण मँडे रण ताल ॥२॥

अन कायर नर घणा अेकला, घण जूझा एकला घणा।
नर बांका अग लूणा नालक, ते सांँचविया जगड़ तणा ॥३॥
काचा रतन दसा गा कंनी, वण ठोज्यां लोकीक विचार।
थूं राणा रांणँग घर थारे, हुवो तुहिंज तू राखण हार ॥४॥
सीसोदा कुल वाट सांचवे, खारो खलां वजाड़े खाग।
अरसी मरण राखण उदियापुर, नागध्रुहा धन काला नाग ॥५॥

( रचयिता:-- अज्ञात )

अर्थ:—विद्रोहियों के पलटने पर ( जब ) शस्त्र का सच्चा खेल खेला गया ( युद्ध छिड़ गया ), ( तब ) पृथ्वी ( मानो ) कांप उठी ! हे राणा हमीर ( प्रथम ) के वंशज ! ऐसे समय केवल एक तूने ही एक हाथ से ताली बजाई ( असंभव को संभव किया )।

जब असत् पथ पर चलने वाले दब्बू व्यक्ति तुझ से अलग होगये ( दुश्मन से जा मिले ), साथ ही कई स्वाभिमानी वीरों ने भी तेरा साथ छोड़ दिया, जिससे खून खच्चर हुआ, परन्तु हे मेवाड़-प्रमुख ( राणा ) ! तेरे अतिरिक्त कौन ऐसा है, जो ऐसे कुसमय में भी एक ही भुजा से भयानक युद्ध लड़ता रहे।

विशेष संख्या में होते हुए भी अन्य कायर अकेले के बराबर है और विशेष जूझने वाला ( निर्भीक योद्धा ) अकेला भी अनेकों के समान माना जाता है। हे राणा जगतसिंह के वंशज ! यही कारण है कि, तूने उन्हीं बांके वीरों का संचय किया है, जो नमक को सोचने वाले हैं ( स्वामि-भक्त हैं )।

जिन्होंने लोकिक व्यवहार भी) नष्ट कर दिया है, ऐसे कच्चे राजपूत, फरेबी राणा रत्नसिंह की ओर जा मिले परन्तु तूने चिंता नहीं की। सच्चा मेवाड़ का राणा तू ही है। राणा पन तेरे ही घर में शोभा पाता है। राणा-पद को रखने वाला एक तूही पैदा हुआ है।

हे शिशोदिया राणा ! एक तू ही कुल के अभिमान को (रजपूती को) रखने वाला, दुश्मनों पर कुपित होकर तलवार चलाने वाला और उदयपुर में मौत को बसाने वाला ( मृत्यु से निडर प्राणों से निर्मोही ) हुआ है। ( इसलिये ) हे काले सांप रूपी नागद्रहेश्वर ( मेवाड़-राणा ) ! तुझे धन्य है।

## [६६] महाराणा भीमसिंह* का कवच धारण करना

### गीत

नेजां नभ फरके धुरे नद जांगी, दल प्राक्रम गहरे दीमोद ।
उतरे दली री जिलहे रण दिन, सिलहे करे भूपत सीसोद ॥१॥
छक उपटे बीरत छिल मारो ( इल मारो चालो हुई धूप ) ।
काबिल गढ़ धूजे किलमां रो, राण सजे झिलनारो रूप ॥२॥
अड़े भेड़ाल घुमर आधंतर, फोजां डमर फबे पुर फैल ।
छिब गिर पड़े चमर छत्र साहां, कमरी कसे तदे पुरकैल ॥३॥
धीह पड़े धूंमा धज उधड़े, सकड़े प्रज अरियां सीमेण ।
असपत रे लागे उर मालो, भालो तद पकड़े भीमेण ॥४॥
चव दंडी सहता गज चाले, ओभलता झाले अस डांण ।
हथणापुर डगमग सह हाले, मूंछा कर घाले महाराण ॥५॥
हद फोजां वढ़वे हिंदवाणी, किरवाणी मँढवे छक साज ।
तद ओटा हेरे तुरकाणी, अड़माणी फेरे असराज ॥६॥

( रचयिता:- अज्ञात )

*टिप्पणी:-यह राणा वि. सं. १८३४ में अपने बड़े भाई हम्मीरसिंह का उत्तराधिकारी हुआ। इसका दीर्घकालीन शासन गृह-कलह एवं सामंत-विद्रोह में ही व्यतीत हुआ और साथ ही मराठों, पिंडारियों से मेवाड़ की आर्थिक क्षति भी हुई। अंग्रेजों से इसने संधि भी की। यह मेवाड़ का दानी महाराणा माना जाता है। इसका निधन वि. सं. १८८५ में हुआ।

अर्थः—शिशोदिया राणा ( भीमसिंह ) जब कवच धारण करते हैं, तब पताकायें नभ-मण्डल छूने लगती हैं, फहराने लगती हैं, नक्कारे बजने लगते हैं और सेना में ( एक प्रकार से ) गहरा ( प्रचण्ड ) पराक्रम दिखाई देने लगता है। यह सब देखकर दिल्लीश्वर के तन-त्राण ( वर्म ) खिसक पड़ते हैं।

जब महाराणा युद्ध की तैयारी करते हैं ( कवच आदि पहनते हैं ), तब वीरता छलक पड़ती है, और खड्ग की योग्यता का खेल रचा जाने लगता है, जिससे मुसलमानों के काबुल प्रदेश के दुर्ग तक हिल उठते हैं।

जब केलपुर का स्वामी ( भीमसिंह ), कमर कसता है, तब उमंग के साथ झूमते हुए योद्धा ( दुश्मन से ) भिड़ जाते हैं, शहर से बढ़ती हुई आडम्बरयुक्त सेना बढ़ने लगती है और बादशाह के छत्र-चमर अति शीघ्र गिरते हुए दिखाई देते हैं।

महाराणा भीमसिंह जब हाथ में बरछा उठा लेते हैं, तब नक्कारों पर लगातार डंका मारा जाता है, पताकायें फहरने लगती हैं, दुश्मन की प्रजा सशंक हो उठती है और बरछा बादशाह के हृदय में चुभने लगता है।

जब महाराणा मूछों पर हाथ धरते हैं, तब चार २ हाथी पंक्ति बद्ध होकर चलने लगते हैं, चमकते और उछलते हुए घोड़े आगे बढ़ने लगते हैं और हस्तिनापुर ( दिल्ली ) डगमगा कर हिलने लगता है।

जिस समय महाराणा अरिसिंह का पुत्र ( भीमसिंह ) अपने घोड़े को दौड़ाता है, तब हिन्दू-सेना विशेष संख्या में आगे बढ़ती हुई दृष्टिगोचर होती है, उमंग में आये हुए वीर तलवारें उठाने लगते हैं और मुसलमान अपने बचाव के लिए आड़ लेते हुए दिखाई देते हैं।

### [६७] महाराणा भीमसिंह के बरछे की प्रशंसा

गीत ( बड़ा साणौर )

समर पतीजा बीज बरसाळ रा मार सो।
झाळ रा वतीजा असो झालो॥

तेज पँज भाल़ रा नयण तीजा तसो ।
भतीजा काल़ रा जसो भालो ॥१॥
अनड़ धड़ कुराड़ा राम अहनाण रे ।
ताण जै सराड़ा करण तेहो ॥
वेरियां वराड़ा पाड़ वाखाण जे ।
जाण जै मुराड़ा भूत जेहो ॥२॥

वजर पड़ियाल़ वांगां गजर वेढरी ।
भवानी चक्र भड़ियाल़ भालो ॥
फोड़ कड़ीयाल़ पैलो तरफ फरहरे ।
असो छड़ीयाल़ भीमेण वालो ॥३॥

तण अड़ग उदैपुर नाथ मर जात रो ।
भक ऊडण बाजरो छुडण भाँजो ॥
अजब अणिया भमर साल खल़ आज रो ।
गजब जमराज रो कुँवर गाजो ॥४॥

डगे पग लगां जाणे भुजँग डाँडियो ।
सुरँग रँग चांड़ियो श्रोणगारी ॥
बार बरछी कही खल़ां बिप बाडियो ।
बीनड़ी काड़ियो हात बारी ॥५॥

नाग जूटो कना नसा तूटो नखत ।
चलासूं बाण छूटो चलावै ॥
कूंत छूटो अठी हूँत जम को धको ।
उठी फुटो थको नज़र आवै ॥६॥

दुधारो भुजां दरसाय दीवाण रे।
जाण रे आय छव छटा जागी ।।
सुधारत दमँग झड़ वाय खुरसाण रे।
लाय सुरताण रे जाय लागी ।।७।।

( रचयिता:– अज्ञात )

अर्थ:—युद्ध में विश्वास दिलाने वाला महाराणा का भाला बरसाती विद्युत ( बिजली ) के समान, अग्नि-ज्वाला की शिखा के समान चमकता हुआ तेज-समूह-युक्त शिव-भाल-स्थित तृतीय नेत्र की तरह एवं यम के भतीजे के सदृश है।

यह ( भाला ): नहीं झुकने वाले वीरों को मारने वाला परशुराम के फरसे के समान, विजय देने वाली करण की शरावलि की तरह और वैरियों को विदीर्ण कर देने वाले प्रेत के प्रज्वलित दण्ड के समान है।

भयानक युद्ध-वाद्य के बजने पर यह वज्रपात-सा और भिड़ पड़ने वालों की दृष्टि में भवानी के चक्र के समान महाराणा भीमसिंह का यह बरछा, वार होने पर कवच बेध पार निकल कर हिलने लगता है।

उदयपुर के स्वामि राणा अरिसिंह के पुत्र का यह भाला, समुद्र की बड़वाग्नि की तरह उड़ने वाले सर्प की भांति छूटते ही नष्ट करने वाले वज्र के समान और आज ( तो मानों ) श्याम नोक वाला एक यही दुश्मन के लिए टसाल है एवं नाशकर्ता यमराज के पुत्र की तरह है।

इस बरछे के वार होने पर दुश्मनों के पैर इस प्रकार डगमगाने लग जाते हैं, मानों किसी भुजंग ने उन्हें डँस लिया हो। स्वयं रक्त के व्यापारी रंगरेज ने मानो इस बरछे पर सुरंग ( लाल ) चढ़ाकर इसे सँवार दिया हो। ( कहां तक कहें ) इस बरछे के वार ने ( तो ) कई दुश्मनों के शरीरों को इस प्रकार आर पार किया है, जैसे किसी दुलहन ने ( अपना मँहदी से रंगा हुआ ) हाथ खिड़की से बाहर निकाला है।

( राणा के भाले का प्रहार दुश्मनों के इस प्रकार लगता है, मानों ( डँसने के लिए ) कोई सर्प जुट गया हो, रात में नक्षत्र ( तारा ) टूट पड़ा हो, चाप से बाण छूट पड़ा हो अथवा यमराज की टक्कर लगी हो ! ( वास्तव में जब ) राणा का बरछा इधर हाथ से छूटता है ( तब ) उधर लक्ष्य (दुश्मन) फूटता हुआ दिखाई देता है ।

चमकता हुआ दुधारी बरछा, राणा के हाथों में इस प्रकार शोभा देने लगा मानों रत्नाकर से प्रसारित प्रभा ने अनोखी छटा उत्पन्न करदी हो । जब उसे खुरसान पर देकर तेज किया गया, तो उससे निकली हुई चिनगारियों ने पवन के द्वारा उड़कर (मानों) बादशाह के शरीर मे अग्नि प्रज्वलित करदी हो ।

## [६८] महाराणा भीमसिंह के बरछे की प्रशंसा

गीत

चले चाढ़ियों पाराथ बांण भाराथ रचांण वाळो ।
चोधारो नचाणवाळो क्रन रो सचाळ ।।
भुजां भीम औतारियो हिंदुवाण भाण वाळो ।
सेल श्री दीवांण वाळो दळीवाळो भाल ।।१।।

गांजी वाथरो वाण धनंजै हाथ रो गिणां ।
अंस भाण पूत रो ज्यों त्रभागो अजीत ।।
यसे तोर सिलारे जड़क्के राण वीर अंगी ।
भालो असुराण हिये खडक्के भे भीत ।।२।।

भलक्के स गुड़ाकेस धारी रूप अभूतरो मो ।
सूतरो सो कूंत-प्राण घटोत सबाह ।।
अहाड़ा राखियो हिये जवन्नेस वाळे आछो ।
बरछो कळेजा बीच तरच्छो बेवाह ।।३।।

सुजाव–अड़स्सी भुजां प्रवाड़ा दिलेस सुणे।
कङ्क पत्रां जोगणी छकातां रत्रां कीच ॥
जवन्नेस वाल़े हिये तूझ सेल ऊजल़ा का।
बीज रा सा भल़ाका न–मावे छाती बीच ॥४॥

( रचयिता:–अज्ञात )

अर्थ: यह बरछा, शङ्कर ( भगवान एकलिंग ) के दीवान (महाराणा) हिन्दू-सूर्य का है ? या महाभारत ( युद्ध ) को रचने वाला, धनुष पर चढ़ा हुआ अर्जुन का बाण है ? अथवा दुश्मनों को नचा देने ( युद्ध में इधर से उधर भगाने ) एवं द्रुत गति से चलने वाला, वीर कर्ण का चौधारा (चार धार वाला) शर है ? ( यह ) पांडु पुत्र भीम की भुजा पर रहने वाले वज्र का अवतार ( तो नहीं है ) जो दिल्लीश्वर के लिए नटसौल बना रहता है ?

क्या यह भाला, धनंजय ( अर्जुन ) की भुजाओं पर रहने वाला व हाथ में लिये जाने वाला गाण्डीव बाण है ? या सूर्य के अंश से उत्पन्न कर्ण का जगत विजयी त्रिकोण शर है ? अथवा शिलाओं पर आघात करने वाली भीम की गदा है ? या वीरकाय महाराणा के हाथों में रहने वाला, मुसलमानों के शिला-तुल्य हृदय में चुभने एवं भयभीत करने वाला सेल ( भाला ) है ?

यह ( भाला ) अर्जुन के द्वारा उठाया गया हुआ बाण है ? अद्‌भुत रूप धारी भीम की गदा है ? या घटोत्कच पर संधानित, सूत पुत्र ( कर्ण ) का शर है ? अथवा 'अहाड़ा' राजवंशी का सेल ( भाला ) है, जिसे यवनाधिप ( बादशाह ) के कलेजे में दोनों हाथों से ठेल-सा रक्खा है ?

महाराणा अरिसिंह के पुत्र की भुजाओं की प्रशंसा, दिल्लीश्वर सुनता रहता है, ( जब कि, वह राणा ) युद्ध में रक्त से योगिनियों के पात्र भर देता है, मांस मज्जादि से कीचड़ मचाता रहता है, उस यवन-नरेश के हृदय में महाराणा का उज्वल भाला बिजली के समान चमक पड़ता है ;

## [६९] महाराणा भीमसिंह का आंतक

गीत ( बड़ा साणौर )

ठहक नगारो डंका दावयतां ठांगले, ओध घोड़ां भड़ां मिले अगला ।
भीम ऊनाल़ वालो तिरुण भल हले, सीत परबत द्रोयण गले सगला ॥१॥
ताछ लंकाल़ जिम सभे रिणताल़ रे, प्रथीपत निडर करमाल़ पछटे ।
तण अरस बिरद उजवाल़ दनकर तपे, बेरहर सिखल हेमाल़ विछटे ॥२॥
प्रथी-रस भोगवे आज मांडां पणा, जुआं गाडां घणा सूर जूटा ।
तेम परकास रवि फोज लाडा तणा, टूक जाड़ा तणा दुसह टूटा ॥३॥
उगा जगपत सरब जांण भाला हथां, चमू तज माण वीराण चलियां ।
राण हिंदवाण (रा) भांण तप राज रे, गिर बरफ जेम असुराण गलिया ॥४॥

( रचयिताः—तीरथराम-आशिया )

अर्थः— जब डंके की चोट नक्कारे बजवाकर दाव देने वालों ( दुश्मनों ) को शिथिल करता हुआ अपने घोड़े व सामंतों के समूह को आगे ( हरावल में ) बढ़ाता है, तब राणा भीमसिंह ग्रीष्मक लीन सूर्य के समान चमकता हुआ दिखाई देता है, जिससे समस्त शत्रु हिमगिरि के सदृश बहकर ( गलाकर ) नष्ट होजाते हैं ।

लंका में होने वाले ( राम-रावण ) युद्ध के समान युद्ध के छिड़ जाने पर महाराणा अरिसिंह का वंशज ( भीमसिंह ) निर्भय होकर खड्गाघात करता हुआ अपने विरुद ( यश ) एवं प्रताप को सूर्य के समान सिद्ध करके हिम-शिखर-तुल्य शत्रुओं को नष्ट कर देता है ।

अधिक दृढ़ वीरों के जुट जाने पर राणा ( भीमसिंह ), जिस सूर्य-सदृश प्रकाश से पृथ्वी का रस-पान ( उपभोग ) जबरदस्ती करता है, उसी प्रकाश ( तेज ) से ( आज ) वह सेना-नायक, दुश्मनों को हिमगिरि के शिखरों की तरह बिखेर देता है ( नष्ट कर देता है ) ।

हाथ में भाला उठाने वाले हे राणा जगतसिंह के वंशज ( भीमसिंह )! सब यह मानते हैं कि, तेरे आतङ्क से दुश्मन अपनी सेना व अभिमान खोकर ( युद्ध भूमि से ) चलते बनते हैं ; ( यही कारण है कि, आज भी ) हे हिन्दू-सूर्य ! तेरे तेज के समक्ष दुश्मन ( मुसलमान ) हिम-गिरि की तरह नष्ट होरहे हैं !

## [७०] महाराणा भीमसिंह का सैन्य प्रयाण

*गीत ( बड़ा साग्रभड़ा )*

सरक सेस दल हके–हक फरक बेहरक सुरख ।
होड़ ताली खुले महफाली हरख ॥
पाये नामे दहूँ राह वाला पुरख ।
केण सिर हुवे भीमेण वाली कुरख ॥१॥

डारणा थाट लख चढ़े हेकड़ डँके ।
वाररा कोट मुख मार मारा बके ॥
ईख आतप वली सतारो ओदके ।
हिंदुवा नाथ कण माथ फोजां हके ॥२॥

सुभट थट हको हक वाज सामाजरी ।
साकुरां भटो भट तियारी साज री ॥
रम जठी तठी माने धड़क राज री ।
ऊठ बण हुवे राणा कठी आज री ॥३॥

उकर नर वीरवर नडर करमर उसर ।
वाज करहर डमर वाव भरहर बसर ॥
पर खरर ग्रीव रज तमर सरभर पसर ।
केआ सर अमर–हर क्रोध वाली कसर ॥४॥

मेच के कमध हाड़ा समद भूप रा।
रंभ रथ अजब पलका दिये रूप रा ॥
ओगजब कोध थानक कसा ऊपरा।
तेज सुण उर भचके अगन तूप रा ॥५॥
(तूल) तुल फूतरा फरे भमता तसा।
दखण दल भांजिया गया तीरथ दसा ॥
जेर कर काढ़िया गेर आंबा जसा।
अड़स फेर कण मीस आरँभ असा ॥६॥
घुरे वरगाल त्रांबाल तासा घणा।
चढे खताल पीधा अमल चोगणा ॥
अभनमा पता समराथ अध्रियामणा।
तू दिये केण सर ताव मूंछा तणा ॥७॥
गाज गजराज सिंधू सबद गावसी।
धसल धज राज हूँकल कलल धावसी ॥
आगरी भाल मामो न को आवसी।
खजाया नाग री भाट कुण खावसी ॥८॥
वर–वर हटाऊँ ऊँच वरदां तणा।
जोध हाजर कड़ा भीड़ जरदां तणा ॥
कूंत छूटां करे घाव करदां तणा।
मही माने अमल असा मरदां तणा ॥९॥
बेर हर समर उड जाय अडतां बकर।
डंड राने लखे सीह वाली डकर ॥

चाय कर कसो भड़ असो बरती चकर ।
टसक-धर जलालां हूँत खावे टकर ॥१०॥
बीजलां घाव आडा खलां बाढसी ।
चह-नथी जकां चंडी खपर चाडसी ॥
नमो गोढाण कर सिंध रे जाडसी ।
केलपुर वेर बूंदी तणो काढ़सी ॥११॥
तोड़ चीतोड़ कुम्भल नगर ते गया ।
नोहथो सेर गढ फेर लेसी नया ॥
दुहूँ गहां अठी उठी धड़के हिया ।
हठी लागो जठी बोल बाला हिया ॥१२॥
नाम धारक मत्रां दसा अनमी नमी ।
गूधरां तुरा बज पाखरां धम धमी ॥
तोडिया वहे पतसाह सूबा तमी ।
जोध रहे जोड़ियां हाथ ऊभी जमी ॥१३॥
सँग हुकम तीन आधीन असगा सगा ।
बलो-वल जेतरा धोर जांगी बगा ॥
लड़ प्रसण थोक हण पायना में लगा ।
जपे नरलोक मुख भोक बीजा जगा ॥१४॥

( रचयिता:- अज्ञात )

अर्थ:— हे महाराणा भीमसिंह ! आप की सेना के प्रयाण से पताका फहरती हुई फैलने लगती है । शेषनाग सिकुड़ने लगता है, अवधूत योगी, शंकर की समाधि भंग होजाती है, महाकाली प्रसन्न दिखाई देती है और दोनों दीन (हिंदू और मुसलमान) आपके चरणों की वंदना करते हैं, तब आपने कुपित होकर (यह) चढ़ाई किस पर की है ?

डंके की पहली चोट नक्कारे पर पड़ते ही भयानक सेना-समूह सजकर चल पड़ा है, राज-द्वार की मजबूत दीवारों के समान दृढ़ वीर "मार-मार !" शब्दोच्चारण कर रहे हैं, जिससे डर के मारे दिल्ली और सितारा जैसे स्थान के स्वामी ( बादशाह, भी ) चौकन्ने होरहे हैं; फिर हे हिन्दू-सूर्य राणा ! यह सेना किस पर बढ़ाई है ?

घोड़े शीघ्र सजाये जारहे हैं, सामन्त-समूह एवं अन्य सैनिकों को आगे बढ़ाने के लिए शोर-गुल होरहा है। हे महाराणा ! सब यवन आपका आतङ्क मानते हैं, फिर भी आप आज इस प्रकार सज कर किस पर चढ़ाई कर रहे हैं ?

तलवार चलाने वाले बड़े २ निडर वीर हुंकार कर रहे हैं, कवच की कड़ियों, डमरू एवं बंब ( वाद्य विशेष ) के बजने से पृथ्वी कांप रही है, गिद्धों के पंख बज रहे हैं, धूल के उड़ने से चारों ओर अंधेरा छारहा है और ( उस पर ) आप क्रुद्ध होकर कमर कस रहे हैं ( युद्ध के लिए सज रहे हैं )। हे राणा अमरसिंह के वंशज ! ( कहो तो, ) यह सब क्यों होरहा है ?

समुद्र के इस किनारे के राठौड़ और हाड़ा आदि क्षत्रिय राजा भयभीत होरहे हैं, रथ में बैठी हुई रम्भा ( अप्सरायें ) अद्भुत लावण्यमय कांति फला रही हैं। हे राणा ! आज यह गजब का क्रोध किस स्थान ( देश ) पर किया जारहा है ? आपके प्रताप को देखकर ( तो ) तोप के हृदय में भी चोट पहुंचती है ( तोप की आग भी शरमाती है )।

आपके द्वारा निकाला हुआ बनावटी राणा रत्नसिंह रुई के फोहे के समान उड़ता रहता है ( भागता फिरता है ), दक्षिण-दल को भी नष्ट कर दिया है, जिससे वह तीर्थों की ओर चला गया है ( फकीर बन गया है ) और आंबा ( नाम विशेष ) जैसे दुश्मन को भी कायल ( दबा ) करके निकाल दिया है। (तब) हे महाराणा अरिसिंह के पुत्र ! यह तैयारी किस लिये की जारही है ?

बहुत से 'तासे' आदि रण-वाद्य वक्षस्थल को विदीर्ण करने जैसे बज रहे हैं, अफीम का चौगुना नशा किये 'रावत'-पदधारी घोड़ों पर चढ़े हुए हैं।

हे समर्थ नव्य-प्रताप! इस प्रकार तय्यार हुआ तू किस ( दुश्मन के ) लिए मूछों पर ताव दे रहा है ?

हे महाराणा! आपके इस प्रकार प्रयास करने पर हाथी गरजने लगेंगे, सिन्धु-राग गाया जाने लगेगा, घोड़े जोर से टाप मारेंगे, हुँकार एवं किलकारी करते हुए वीर आगे बढ़ेंगे, तब आपको अग्नि-ज्वाला स्वरूप अथवा क्रुद्ध सर्प के समान देखकर किसकी हिम्मत होगी, जो आपके सामने आये ? कौन ऐसा है, जो आपकी टक्कर को सहन करेगा ?

हमेशा के लिए जो उच्च विरुद ( महायश ) से सुशोभित होते रहते हैं, जो बरछा चलाने वाले दुश्मन पर तलवार का घाव कर देते हैं, वे योद्धा सोने से बने कवच पहने ( तेरी ) सेवा में उपस्थित हैं। ( हे महाराणा! ) ऐसे वीर पुरुषों के अधिकार में ही पृथ्वी रहती है।

जिनकी ललकार सुन कर शत्रु युद्ध से हट जाते हैं ( युद्ध-भूमि छोड़ देते हैं ) जिनकी सिंह-तुल्य गर्जना से शत्रु-दण्ड स्वीकार कर लेते हैं, ( तब हे महाराणा! ) ऐसा कौन चक्रवर्ती है जो सोत्साह सज धज कर दर्प रखता हुआ इन वीरों से टक्कर लेगा ?

ऐसा अनुमान किया जाता है कि, जो दुश्मन महाराणा का बाधक होगा, उसे यह तलवार से काट देगा, तृप्त हुई रण-चंडी के खप्पर को फिर से रक्त द्वारा पूरा कर देगा, 'गोडवाड़'-भू-भाग तक ही नहीं, अपितु यह सिंध-तट तक वार करेगा और यह केलपुर-अधिपति (मेवाड़ राणा) बूंदी से भी बदला लेगा।

जिन शत्रुओं ने चित्तौड़ और कुम्भलगढ़ का ध्वंस किया है, उनसे बदला लेता हुआ यह नौहत्था ( नव हाथ लम्बा ) सिंह ( महाराणा ) नये २ नगर और दुर्ग ले लेगा। ( यही कारण है कि, ) इधर उधर के रहने वाले अन्य हिन्दू व मुसलमान काँप रहे हैं और सोच रहे हैं कि यह हठी महाराणा जिस तरफ हमला करता है, उस ओर विजय प्राप्त कर ( ही ) लेता है।

कभी नहीं झुकने वाला ( स्वाभिमानी ) वीर होकर भी जो ( राणा का ) दुश्मन है, उसकी दशा बिगड़ जाती है। ( वास्तव में ) यह राणा बोड़ों के

घुंघरू और पाखरें बजवाता हुआ ( हय-सेना बढ़ाता हुआ ) बादशाह के सूबों ( हाकिमों ) को नष्ट कर देता है । ( और तो ठीक परन्तु ) विश्व के योद्धा ( तक ) हाथ जोड़े हुए इसके सामने खड़े रहते हैं ।

( राणा भीमसिंह के आगे ) अपने और पराये जितने भी राजा है, वे तीनों तरह के आदेशों ( दण्ड सेवा, कर ) को स्वीकार करते हुए साथ देते हैं, नवकारसी लोग हमेशा विजय-गान गाते रहते हैं और लड़ाई हो जाने पर भी दुश्मन, ( राणा का) अधिकार मानते हैं । यह सब देख कर ससार कहता है कि, महाराणा भीमसिंह, मानों रजपूती बट ( बाँकेपन प्रतिष्ठा ) का धारण करने वाले दूसरे ही राणा जगतसिंह हैं ।

## [७१] महाराणा भीमसिंह का सैन्य-प्रयाण

( गीत )

अडर ऊथपण दिलं हूँ नाथ असुराण रौ,
मँडे विकराल हुल समैं धमसाण रो ।
भीम अड़सी सुतन हींदवा भाण रो,
देखिजे रूप जिण बखत दीवाण रो ॥१॥
चमूं ऊभै धकां चाक धर चल चलै,
कमठ अहिराज सरसा अडिग कलमले ।
रूक झड़ बँबालां बहाल रत रल वलैं,
वीर खूमाण अवसाण सिध त्रिलकुलैं ॥२॥
अपछरा बिमाण नभ बरां काजि अड़बड़े,
बिहसि नारद सँकर जोगणी बड़बड़ै ।
रीण धजवड़ां छग दवा धर रड़बड़े,
चौल मुख राण अप्रमाण पोरस चड़े (ढ़े) ॥३॥
गहर रूकां झलां झलोबल बह गरट,
बलोबल गइँद गिर सिखर पड़तां विकट ।

तड़छियां धड़ां हदवणे नद उभे तट,
उण वखत अमर-हर गुमर जग उअवट ॥४॥
कोह मचि धम जगर लोह बिकराल़ रा,
बठै रँग फवारा होद बंगाल़ रा।
बिया हम्मीर रिझ वार बांहाल़ रा,
बेखिजै तठै छक-तोर बिरदाल़ रा ॥५॥
चाइ लगि अपछरां रथां सूरां चढ़ै,
माग गयणागरी बिमाणा हूँ मढ़ै।
प्रवाड़ा अहाड़ा तणा कवि-इण पढ़ै,
वीरता तणा छक तौर दिन दिन बढ़ै ॥६॥
जवन-झल़ आदि खल़ सकल उड़ि जावसी,
प्रसिद हल फते हद समँद लग पावसी।
दूठ इसड़ो समै भीम दरसा वसी,
आभि लागो तखत उदैपुर आवसी ॥७॥

( रचयिताः- अज्ञात )

अर्थः- निर्भयता पूर्वक दिल्ली से मुस्लिम बादशाह को उलट देनेवाला और भयंकर घमासान युद्ध पृथ्वी पर प्रारम्भ करने वाला राणा अरिसिंह का पुत्र भीमसिंह, जो हिन्दु-सूर्य एवं एकलिंग महादेव का प्रधान कहलाता है, का युद्ध के लिये चढ़ाई करते समय, स्वरूप देखने योग्य है।

दोनों ओर की सेनाओं की टक्कर से पृथ्वी चलायमान होकर कुम्भकार के चाक की तरह चक्कर काटने लगी। कच्छप और शेषनाग के अडिग फन कलमलाने लग गये। तलवारों की झड़ी से रक्त रण-स्थल में जोर से बहता हुआ फैलने लगा। खुमाण-वंशज राणा ने अपनी चढ़ाई से सजग सिद्धों को भी व्याकुल ( भयभीत ) कर दिया।

अप्सराओं के विमान आकाश-मार्ग पर, वीरों का वरण करने के लिये द्रुत गति से चल पड़े। हँसते हुए नारद, शिव और योगिनियाँ बड़बड़ाने

लग गई ( कुछ का कुछ बकने लग गये )। युद्ध-भूमि में तलवारों से कटे हुए दोनों दल के वीरों के रुण्ड इधर उधर फिरने ( नाचने ) लगे। ऐसे समय में राणा के मुख पर अपार पुरुषार्थ से अरुणिमा छाई हुई दिखाई देने लगी।

सैन्य-समूह में तलवारों की ज्वाला (चमचमाहट) अधिक फैलने लगीं। गिरि-शिखरों के तुल्य बड़े २ हाथी एक से एक गिरने लगे। तड़फड़ाते हुए रुण्ड-समूह, रक्त-सरिता के दोनों किनारे के समान बन गये। उस समय राणा अमरसिंह के वंशज का अभिमान संसार में सबों को विशेष रूप से दिखाई देने लगा।

शस्त्रों की भयंकर खड़खड़ाहट से चारों ओर शोर मचने लगा। (शरीर से) रक्त की धारा छूटने पर ऐसा लगा मानो रंग-भरे होज से फुहारे छूटरहे हों, उस समय विरुद (यश) धारण करने वाले एवं खड्ग के रिझवार दूसरे ही राणा हम्मीर ( भीमसिंह ) की रण-उमंग देखने योग्य है।

अप्सराओं की इच्छा करते हुए वीर-गण ( अप्सराओं के साथ ) रथारूढ होने लगे। नभ मार्ग विमानों से आच्छादित हो गया। आहड़ा-राजवंश की पद्य मय ख्याति कवि पढ़ने लगे, जिससे राणा के शरीर में वीरता की उमंगे लगातार बढ़ने लगी।

इस प्रकार महाराणा के उत्साह पूर्वक बढ़ने से निश्चय है कि, मुस्लिम वंश और उसके साथी ( दुश्मन ) जितने भी है, वे सब उड़ जायेंगे (नष्ट हो जाएंगे) और राणा की विजय समुद्र-तट तक होगी। महाराणा भीमसिंह इस युद्ध-घटना को भयानक रूप देता हुआ विजय प्राप्त करेगा और उन्नत होकर आकाश को छूता हुआ पुनः उदयपुर को लौट आयेगा।

### [७२] दुलहे रूपी महाराणा भीमसिंह के प्रति भू-सुन्दरी का प्रेम

( गीत )

घरर बाज बिसराल् त्रांबाल् यक डँक घुरे,
फरर असराल् नेजां गजां फरहरे।
धीठ कपराल् तन सूर सहलां धरे,
केलपुर तो जसा बींद वसुधा करे ॥१॥

धोम धूंधर गयण सोर, धमधमी रा,
घोर घूघर ठणाण अछर धमघमी रा ।
नाग आकुल फणाण फेर फुणनमी रा,
जोध भीमेण सा लिये लछ जमी रा ॥२॥
घणा छल रमी तज छेल नवलां घणां,
तक गया देव लख छंद अवला तणां ।
पताहर दीजिये धाड़ सवलां पणां,
तू लिये भांज भड़ मोग कमला तणां ॥३॥
तोप धड़हड़ अगन झलां नभ ततीरा,
जोगणी चड़ड़ रत गड़ड़ नद जतीरा ।
पे हड़ड़ हास जँत्र झणाक रिख पती रा,
मरद—मांटी तने धाड़ विसमती रा ॥४॥
राजग्रह वाट रा गयण साकुर रुके,
भूल गणणाट रा अछर संदन झुके ।
तो जही खाट रा सीह अजका तिके,
जोभ उग्रवाट रा भोम मांणे जिके ॥५॥
वज सणण केमरां उड़े गोला वणण,
ठवे सूरां—परां परी नेवर ठणण ।
झणाक रिख जंत्र खग ताल टोपा झणण,
तो जसा मही मांने अमल अड़स तणा ॥६॥
धरव बर अने—रां नथी हूँसां भरे,
भांम पत हुकुम आधीन कदमां भरे ।
थकी सेझां रयण रैंनी मन थरहरे,
करग जोड़े खड़ी लाख सरदा करे ॥७॥

 

पियो नत फूल आसा फिरँग ऊपना,
पलँग रस लियो कामी मदन रूपना ।
जमी नत नवादी नार नव जोबना,
पूर रस सवादी धाड़ रसिया पना ॥८॥

( रचयिताः-- अज्ञात )

अर्थः-- हे राणा ! जब तू चढ़ाई करता है, तब लगातार डंके की चोट से नक्कारे आदि रण-वाद्य कटु-स्वर में बजने लगते हैं, अश्व कूदते हुए चलते हैं, हाथियों पर पताकायें फहरने लगती हैं और वीरों के शरीर कवच से मजबूत कसे जाने लगते हैं। हे केलपुर--अधिपति (मेवाड़-राणा) ! (वास्तव में) आप जैसों (शूरवीर) को ही पृथ्वी अपना दुलहा (स्वामी) बनाती है।

तोपों आदि से बारूद के प्रज्वलित होने पर आकाश धूएं से धुंधला हो जाता है, युद्ध-भूमि में अप्सराओं के पैरों में घुंघुरू बजने लगते हैं, तेरे (सैन्य) प्रयाण से फन टालता हुआ (बचाता हुआ) और लचकता हुआ शेषनाग व्याकुल हो जाता है। अतः हे राणा भीमसिंह ! तेरे जैसे वीर ही पृथ्वी की नजर प्राप्त कर सकते हैं [ तुम जैसों पर ही पृथ्वी स्नेह--दृष्टि--डाल सकती है ] ।

यह कमला (लक्ष्मी) बहुत से निर्बल छैलों (सुन्दर- बने ठने पुरुषों) को तज कर जहाँ तहाँ बहुतों के साथ रमण करती रही है। इस अबला (लक्ष्मी) के नाज नखरों को देखकर [तो] देवता भी इसे छोड़कर भाग गये परंतु हे महाराणा प्रताप के वंशज ! तेरी सबलता (सामर्थ्य) को - धन्य है, जो तू दुश्मनों को नष्ट कर इस लक्ष्मी का (स्थायी रूप से) उपभोग करता है।

(सैन्य) प्रयाण के समय तोपों की ध्वनि के साथ ही अग्नि की ज्वाला आकाश- मंडल को छूने लगती है। एक ही सांस में योगिनियां रक्त पान शुरू करदेती हैं। महाबली हनुमान की हुँकार होने लगती है। शिव आदि देवताओं का अट्टहास होने लगता है। देवर्षि नारद की तंत्री (वीणा) भी झनझना उठती है। महापुरुष स्वामी राणा ! तुझे धन्य है कि तू इस प्रकार के दृश्य उपस्थित कर देता है।

घोड़े उछलकर ग्रहाधिप (सूर्य) के नभ-मार्ग रोकने लगते हैं। अप्सराओं के रथ के घुंघरू बजने लगते हैं और नभ-मार्ग पर चक्कर लगाते हुए नीचे उतरते दिखाई देते हैं। ऐसे समय में तेरे जैसा नाटा ( छोटे कद का ) वीर ही अरावली-से पहाड़ी प्रदेश के अभिमान में आकर भूमि का उपभोग करता और आधिपत्य जमाता हुआ सिंह तुल्य विश्राम लेता है।

सनसनाते और भुनभुनाते हुए तोपों के गोलों के साथ ही चिनगारियाँ उड़ने लगती हैं। बहादुरों को देखकर अप्सरायें नूपुर बजाने लगती हैं। नारद की वीणा बजने लगती है। खड्गाघात से शिरस्त्राण भी बज उठते हैं। ऐसे समय में हे महाराणा अरिसिंह के पुत्र ! तुम-से वीर का ही अधिकार पृथ्वी मानती है।

यह पृथ्वी अन्य की अभिलाषा नहीं कर स्त्री तुल्य हो तुम्हें पति मान कर तुम्हारे ही अधीन है और इच्छानुकूल रहती है। ( यह पृथ्वी ) तेरे समक्ष रात में शय्या पर रति-श्रमिता बाला की तरह थर्राती एवं प्रसन्न होती हुई हाथ जोड़ कर लाखों बार तेरा अभिवादन करती है।

प्रसन्नता रूपी यंत्र से निकाली हुई अत्यन्त तेज मदिरा का पान करते हुए हे कामदेव रूपी राणा ! तुम पर्यंकरूपी सिंहासन पर इस ( स्त्री रूपी भूमि ) का आनन्द लेते रहो; क्योंकि पृथ्वी नवेली स्त्री की तरह हमेशा तरुण रहने वाली है और इसके प्रेम के इच्छुक एक तुम ही रसिक रूप में धन्य कहे गये हो।

## [७३] महाराणा भीमसिंह का हाथी

गीत ( सुपंखरो )

मले सामठां हजारां लोक भागवो बसत्ती मना।
सुणे खून आयो जत्र दसत्ती समाथ ॥
लोप टाको दीधी झाट आयेला मसत्ती लागे।
साकलां हसत्ती ग्रहूं तोड़ी हेक साथ ॥१॥

माहुतां ठाठियां टोला प्रवीणा–सबोला मले ।
अखे दोला छले धले हबोला अपार ॥
रूप मेर माथी आंगां एर–सी उफेल–रोस ।
जंघां–बाघरेस हाथी खुले जेण बार ॥२॥
जठे भालां चरक्खी एड़ियां आंण घणा जेता ।
ठांण में मानवां तेता फंफेड़िया ठाल ॥
विरुतो अत्र ऊो उभो बखेरे बेड़िया बंध ।
छेड़िया जत्र सा बोम वज्र सो छंछाल ॥३॥
खुलातो लंगरां पाव डुलातो फाटकां खम्भ ।
चलातो भुसुंडां फाल सलातो–चड़ील ॥
छातो सीस रजी भोम उड़ातो गेणाग छबे ।
फबे रीस–रातो आग जोम मातो फील ॥४॥
पंडा जोप को सो मेर सांकलां रठठूठे पांव ।
कीधां कोप को सो जत्र लागो बोम कंध ॥
उभो ठाण बीच डाकी बीरभद्र ओप को सो ।
गोलो तोप को सो तूटे नगां–धू गयंद ॥५॥
ग्रहे सेल डाचरो मरोड़े करे इन्द्र गाज ।
धूबे क्रोध माचरो मारूप काल धीठ ॥
चाचरो बँबाल रत्तां अपार मजीठां चोल ।
अणी बार तणो दीठां बणे ज्याका रीठ ॥६॥
लागो मोत चाले हेक आदमी जीं बार लूंठो ।
तिके काज बंधेवा चलायो वूठो–तूप ॥

पूठो माल् जेणा माथे अँगुठो लागतां पांव ।
रूठो थको जूठो हाथी तूटो काल् रूप ॥७॥
करेबो पल्क्को काच पच्छरी उडेगो कना ।
तच्छरी बादलां बीज ज्युं गिरे तयंड ॥
तरेबो मच्छरी नीर देबो जाण हाथ ताली ।
बरेबो अच्छरी सूर फरेबो वयंड ॥८॥
करे गाढ धायो लोक सांकला जड़ी रे काज ।
अचाणंखी मोरहूँ पड़ी रे बीज आण ॥
मझे आयो जकां तणे कोर हूँ अड़ी रे सूंड ।
जोर हूँ दड़ी रे दीधो दोटो मल्ल जाण ॥९॥

लखे जेण वारां थके भैच के हजारां लोक ।
अखे हरी हरी सारा मुखे कम्प अंग ॥
टलां धूं मचक्के नाग नाग दांत भोम टके ।
मके गीम-बात धके झुके मेर शृंग ॥१०॥

गाज हाक नौ तरफाँ मचायो आराण वेस ।
जकाँ बार अयासा खचायो तेण जीव ॥
सेस कराँ हूँत जठे नाग रो ऊँचायो सीस ।
देखो काल् खायो लोक नचायो दईव ॥११॥

पछे बँधे लंगराँ हठालो पब्बे रूप पांव ।
करे जत्र चालो भालो यला जां करोड़ ॥
खूठो ओण गीत कालो मदालो उबेड़ खम्भ ।
यला इन्द्र भीम वालो दँतालो अरोड़ ॥१२॥

( रचयिता:—बखतराम 'आशिया' )

अर्थः— अन्तक ( यम ) के समान कर-प्रहार करने वाला बलवान हाथी खून ( मस्ती ) पर आगया है। अतः कोई शहर में भाग दौड़ न करे ( घर से बाहर न निकले ) ऐसा ढिंढोरा पीट देने पर भी देखने के लिये हजारों की संख्या में वहाँ स्त्री पुरुष इकट्ठे हो गये । इस समय मस्त हाथियों को वश में करने वालों द्वारा उसे घेर लेने पर भी वह ( हाथी ) मस्ती में आकर उन्हें लोप गया ( रुका नहीं ) और पैर के एक ही झटके से उसने आगे पीछे बँधी हुई तीनों सांकलों को तोड़ दी ।

वह 'बहादुरजंग' नामक हाथी उत्तु ंगकाय सुमेरु पर्वत के साथी के समान था, विशेष क्रोध में आकर बंधन से मुक्त हो लुहार की धमनी के समान फु ंकार ने लगा, तब महावतों एवं चरकटों ( हाथी को घास पानी डालने वालों ) के समूह तथा हाथी को प्रोत्साहन देने वाले ( सांटमार, गड़दार ) सब के सब वहाँ इकट्ठे हो गये और चारों ओर मे घेर कर उत्साह पूर्वक " धले-धले " ( हाथी को काबू में करने का शब्द ) कहने लगे ।

काबू में लाने वाले विशेष चपल साँटमारों को, वहाँ जितने भी हस्ति-शाला में थे, सबको परख २ कर उसने झंझेड़ दिया ( हिला दिया )। उस समय हाथी में मानों वीर ( बावन वीरों में से कोई एक ) अथवा देवता प्रवेश कर गया हो, इस प्रकार सांकलों की कड़ी २ को तोड़ कर खड़ा था और छेड़ने पर ( तो ) वह हाथी यम की तरह अथवा आकाश से गिरते हुए वज्र की तरह मालूम होता था ।

वह चिढ़ कर पैरों के झटके से कुम्भालों ( हाथी को बांधने के छेद दार पत्थर ) को हिलाता और लंगरों को तोड़ता हुआ भिड़ कर सूंड को इधर उधर चलाने लगा और पृथ्वी से धूल उठा २ कर आकाश की ओर उछालता हुआ अपने ही सिर पर डालने वह प्रमत्त हाथी जोश में आकर क्रुद्ध हो गया। धधकती हुई आग के समान दिखाई देने लगा ।

अपने शरीर से सुमेरु पर्वत की समानता करने वाला भयानक हाथी पैर से साँकल घसीटता हुआ और कंधे से आकाश को छूता हुआ। यमराज की तरह क्रोधित वीर भद्र के समान हस्तिशाला में खड़ा होगया और पुरुषों की ओर तोप के गोले की तरह झपटा ।

काबू में लाने वालों के बरछों को उसने इन्द्र ( मेघ ) की तरह गरजते हुए, मुँह ( सूंड ) में लेकर मरोड़ दिया। ढीट और क्रुद्ध वह हाथी उस समय साक्षात काल ( मृत्यु ) स्वरूप हो गया। मजीठ के समान जिसका भाल गहरा लाल रंग ( सिंदूर ) से रंगा हुआ था। उस समय उसका वह आकारीठ ( अरिष्टा-कृति ) रूप देखते ही बनता था।

उसी समय ( काबू करने वालों में से ) कोई एक युवक, जो मानों मौत से खेल रहा था, इस हाथी को बाँधने के लिये तोप के दगने ( गोले ) की तरह झपटा और हाथी के पुठ्ठे की ओर ताकते ही उस पर पैर देकर चढ़ गया। युवक के पैर का अंगूठा छूते ही वह हाथी भी काल-रूप बन क्रुद्ध हो उससे भिड़ने के लिये झपटने ( पछाँटे ) लगा।

उस समय हाथी इस आतुरता से फिरता हुआ, ऊपर आये हुए युवक को मारने झपटा, जैसे काँच का चिलका पड़ा हो, पक्षी उड़ा हो, बादल से गरजती हुई तिरछी बिजली पड़ी हो, पानी में चपल गति से मछली तैरी हो, हाथ की ताली लगी हो अथवा अति शीघ्र अप्सरा और वीर का वरण हुआ हो।

युवक दृढ़ता पूर्वक हाथी को शृंखला से बांधने उसकी पीठ पर झपटा था वह ऐसा लगा मानो हाथी की पीठ पर बिजली गिर पड़ी हो! परन्तु सूंड के छूते ही तय्यार होकर झपटने वाला वह युवक इस प्रकार फैंका गया, जैसे किसी मल्लने बलपूर्वक गेंद फेंकी हो।

यह देख कर हजारों दर्शक चौकन्ने होगये और काँपते हुए मुख से हरि-हरि ? कहने लगे। ( इतने पर भी ) हाथी उस पड़े हुऐ युवक पर झपटा जिसके धक्के से निश्चल ( अडिग ) शेषनाग भी डगमगा गया। प्रहार करते हुऐ हाथी के दांत जमीन पर जा टिके। उस समय ऐसा मालूम हुआ मानों पवन के प्रकोप से सुमेरु पर्वत का शृंग झुक गया हो।

उस युवक का श्वास प्राणान्त के रूप में ऊपर उठ गया था, तब काबू करने वाले अन्य व्यक्तियों ने चारों ओर से ललकारते हुए हाथी से भयंकर युद्ध शुरू कर दिया, इस समय वे सहस्त्र बाहु के समान बने हुए थे। उन्होंने मोहरा ( दन्त प्रहार ) करते हुए हाथी के सिरको ( बल्लमों आदि के

बल पर जमीन से हटा दिया। यह देख कर दर्शक कहने लगे कि, यह युवक काल ( मृत्यु ) द्वारा ग्रसा जा चुका था; परन्तु भगवान ने इसे बचा लिया।

पृथ्वी के इन्द्र रूपी राणा भीमसिंह का बड़े २ दांतों वाला श्यामवर्णी वह मस्त तथा भयानक हाथी ने कुम्भालों को उखाड़ कर इस तरह ( ऊपर बताये गये अनुसार ) स्वच्छंद हो यम के समान खेल किया, जिसे करोड़ों लोगों ने देखा। फिर काबू में लाने वालों ने उस पर्वत काय हाथी के पैरों में लंगर डाल कर बाँध दिया।

## [७४] अतुलनीय महाराणा भीमसिंह

गीत ( छोटा साणोर )

छत्रधर चीतोड़ तणी अन छत्रियां, कहो जोड़ कीधी नर केण।  
अड़सी सुतन वडालां आचां, भूपालां ओपम भीमेण ॥१॥  
आयां सरण दिये नह ऊतर, हाथ करण दत सत्रां हणो।  
अमर कलोधर वारां आंकण, तूं ढांकण हिंदुवा तणो ॥२॥  
तो सूं गरब धरे चीतोड़ा, त्रपत सरब खत्र नामो नाम।  
प्रथमी ऊपर सहर उदैपुर, वंसां खटतीसाँ वसराम ॥३॥  
सॉपत व्रत ससबद ले सारो, एक नकारो कहण अणोर।  
अन धर तणा रहे सह ओलै, अण घर रे जोड़े नँह ओर ॥४॥

( रचयिता:- अज्ञात )

अर्थ:— चित्तौड़-अधिपति की बराबरी कौन राजपूत कर सकता है? यह राणा अरिसिंह का पुत्र भीमसिंह प्रलंब बाहु है, इसकी उपमा अन्य राजाओं को ( भले ही ) दी जा सकती है ( परन्तु इसे दूसरों की उपमा किस प्रकार दी जाय? )।

जो इस ( राणा ) की शरण में आता है, उसे इन्कार नहीं होता। इसके हाथ, दान करने वाले एवं दुश्मन को नष्ट करने वाले हैं। यह राणा अमरसिंह

की कला धारण करने वाला अर्थात् वंशज है। सबों के सिर यह एहसान करने वाला है। यह हिन्दुओं का ढक्कन ( इज्जत रखने वाला ) है।

कवि कहता है कि (तेरे) चित्तौड़-स्वामी के समक्ष जो गर्व करता है, उससे मेरा नमस्कार है ( मेरी ओर से उसे लानत है ) । क्यों कि, सदा से इस पृथ्वी पर एक मात्र उदयपुर ही छःतीसों क्षत्रिय-वंशों का आश्रय-स्थल माना गया है।

इस वंश की यही प्रतिज्ञा है कि, यश-संपत्ति का संचय करता रहे है। केवल कमी है तो 'ना' कहने की ( निषेध करने की ) । इस राज-वंश की छत्र-छाया में सब रहते आये हैं । इसकी बराबर कोई नहीं हो सकता ।

## [७५] राणा भीमसिंह का कवि, अश्वों एवं वीरों के प्रति सम्मान

गीत ( सुपंखरौ )

भला आखराँ भमंगी-याल भारथाँ अचल्लाँ भैस,
भाखणा अमोघ भाण रत्था क्रोध भींग ।
भारी गुणा रंभ-भाव आंटीलां अरघ्घे भूप,
भाणवाँ भिड़ज्जाँ भड़ाँ एहा भीम सींग ॥१॥

सीध गिरा डाच-सोम-बीजरा धरंमी स्याम,
सरा जोड़-बात संगी सेर माँ ममाम ।
सबद्दाँ राखणाँ ठेक सूफीलाँ स लाजां संचे,
सु पाताँ साकुराँ भड़ाँ दूसरो संग्राम ॥२॥

प्रवीण-हेडंबी पंडा-जंगी सा ऊजला-पखां,
पंगी कृता पंखी-वेग जंग रा पाराथ ।
पर-बाणी-पाणी-पंथा पैला-धू-खँडेतां पाले,
पातवां पभंगां पहां एहा प्रथी नाथ ॥३॥

रला—नाम रक्खा झंप—उडांण आ थाण ओला,
अंसी—देव डाँण—अंगा क्रोधाण अनंत ।
ईखे भाण हिंदुवाण न बंदै उरारा ऐता,
बाण पाण माण अहूँ सरारां वदंत ॥४॥

( रचयिता:—"बखतराम" )

अर्थः—शुभाक्षरों के उच्चारण करता, सत्य वक्ता और विशेष गुणों से युक्त कवियों का, सर्प के समान झूलते हुए अयाल ( गर्दन के बाल ) वाले सूर्य-रथ में जुतने जैसे तथा रंभा की तरह नखरे वाले ( चंचल ) और युद्ध में अचल रहने वाले क्रुद्ध वीरों का ही राणा भीमसिंह सम्मान करता है।

जिनके वचन सिद्ध हैं, जो पद्य-पंक्ति जोड़ने ( कविता करने ) वाले हैं और जिनके पास शब्द-संग्रह है, उन कवियों का. दूज के चाँद की तरह उजली दंत-पंक्ति है, जो पवन के साथी ( द्रुतगामी ) हैं तथा ऊँची २ दीवारों को लांघ जाते हैं, उन घोड़ों का और उन वीरों का जो स्वामिधर्म पालने वाले हैं, ( रण में ) सिंह की तरह भिड़ने वाले हैं एवं लज्जा ( मर्यादा ) शील हैं, उनका राणा सांगा के समान महाराणा भीमसिंह संग्रह करता है।

बुद्धि में जो गणेश के समान हैं, यश-कर्त्ता हैं, जिनकी वाणी पूर्ण है ( संपूर्ण वर्णन करने वाले हैं ) ऐसे कवियों का, जो ऊर्ध्व काय हैं, पक्षियों के समान जिनका वेग है, जल-मार्ग पर भी चलने की शक्ति रखते हैं—ऐसे घोड़ों का एवं जो मातृ-पितृ पक्ष के उज्वल ( कुलीन ) हैं, युद्ध में अर्जुन-तुल्य हैं और जो शत्रुओं के मस्तकों को खंडित करने वाले हैं ऐसे राजवंशियों का पृथ्वीपति ( महाराणा भीमसिंह ) पालन करता है।

पृथ्वी पर जो नाम रखने वाले ( यशस्वी ) हैं, देवअंशी हैं, उन कवियों का, जो ऊँचे कूदने वाले ऊर्ध्वकाय घोड़े हैं, उनका एवं जो इस मेवाड़ स्थान के लिये अर्गला स्वरूप है एवं शत्रुओं पर क्रोध करने वाले हैं, उन सामंतों का हिंदु-सूर्य महाराणा सम्मान करता है और क्रमशः कवि-वाणी की, अश्व की तेजी को, सामंतों के वंश गौरव की प्रशंसा करता है।

## [७६] महाराणा भीमसिंह का अन्य राजाओं को उदारता बिषयक उपदेश

गीत:- ( छोटा साणोर )

वांटो धन धन आप रो वारो, जावे सपना जेम जमारो।
अलमे चंगा बोल उबारो, भीम कहे वरदां रो भारो ॥१॥
वाघा तणी सुणो जस वाणी, फजर गवे लाखो फूलाणी।
माया ज्यांरी ज्यां हाथां माणी, सुद तारां आखे अड़साणी ॥२॥
पात भड़ां गलिया पीवाड़ो, खूब हगामां माल खवाड़ो।
गड़ पतिया जस बोल बावाड़ो, महपत भीम कहे मेवाड़ो ॥३॥
भीम कहे ज्यांने जस भावे, रव सस जेते नाम रहावे।
दीदां गज सांसण तण दावे, जगपत री कीरत नहँ जावे ॥४॥
भूपालां सुणज्यो भल भल्लां, देयणो रहणो हेकण दल्लां।
रव सस जेते नाम रहल्लां, गड़पत भीम कहे जस गल्हां ॥५॥

( रचयिता:- अज्ञात )

अर्थ:—विशेष विरुद ( यश ) धारी राणा भीमसिंह कहता है—हे राजाओं! आपको धन्य है, जो ऐसा समय मिला है इसलिए धन बांटते रहे हो ( दान देते रहे हो ); क्योंकि यह जीवन स्वप्न-तुल्य है। इसलिये अपना नाम अमर करना चाहिये।

राणा अरिसिंह का पुत्र कहता है कि, हे वदान्य ( उदार ) पुरुषों! आप सबने ( व्यक्ति विशेष ) का नाम एवं कीर्ति तो सुन ही रखी है। ( इसी प्रकार ) लाखा फूलानी ( एक दानवीर ) का नाम भी प्रातः लिया जाता है। यह सब उदारता के ही कारण हैं। ( वास्तव में ) यह लक्ष्मी उन्हींकी है, जिन्होंने कि इसे अपने हाथों से दान करदी है ( जिन्होंने इसका केवल संग्रह किया, उनकी कदापि नहीं है )।

मेवाड़ेश्वर महाराणा भीमसिंह कहता है कि, हे राजाओं ! कवियों एव सामन्तों को कसूंभा ( घोटी हुई अफीम ) पिलाओ, विशेष उत्सव के साथ उन्हें अच्छे २ व्यंजन खिलाओ और अपना यशगान कराते रहो ।

महाराणा भीमसिंह कहते हैं—जिन्हें यश अच्छा लगता है उन्हींका नाम, सूर्य चन्द्र के रहने तक अमर है । यह सभी जानते हैं कि, हाथी और पृथ्वी के दान देने पर ही मेरे पूर्वज राणा जगतसिंह की कीर्ति का नाश नहीं हुआ ( कीर्ति रूप में अमर हैं ) ।

नराधिप भीमसिंह कहता है—हे राजाओं ! ( ध्यानपूर्वक ) मेरा कथन ठीक तरह सुनो ! ( वह यह कि ) एक मात्र सच्चे दिल से दान देते रहो ! इसी से आपका नाम यशगान के रूप में सूर्य चन्द्र के रहने तक रह सकेगा ।

## [७७] महाराणा भीमसिंह की उदारता

गीत ( छोटा साणोर )

मांगणगर भीम अई खूमाणा,
जस बारां आकंण जोधार ।
कीधो सलल बीच अनकारां,
दत मारग मोटा दातार ॥१॥

ऊठे बीस तीस किव आवे,
दस दस छलिया जांण दध ।
अथ ऊझल दीसे दत वाली,
बसन पँचाली तणी बध ॥२॥

दत लघु वेस बधायो जिण दिन,
अजेइ सवायो चित्त अछेह ।
आयो छेह कुबेर तणे अथ,
(पण)छत्रपत देयण न आयो छेह॥३॥

पे मोजां हयराज पढाला,
लांक अढाला देयण लख ।
वखत निहार भीम न्रप वाला,
सुरपत वाला हीण सुख ॥४॥
गोठां गेघट आव गुलांबां,
पूर पुलावां डमर पड़ ।
पचरंग धार—करावां अण पल,
झड़े सुरावां मेह झड़ ॥५॥
मण माणक अंबर घण मोला,
पहरण भुगतण न्रपत पण ।
पूरब तप कीधा जिण पाया,
रांण सेव कदमां रहण ॥६॥
(ज्यांरे) हूँकल कलल बार बरहासां,
खलहल मद घूमे गज खंभ ।
किव रावां वाले घर कीधा,
अन रावां वाला आरंभ ॥७॥
अे आचार देख अड़सांणी,
महपत अन छूटा तज मांण ।
तो दत देयण तार नहँ टूटा,
मण माणक खूटा महरांण ॥८॥
घर कच्छी करवल घठियांणी,
कठियांणी गहणा कुरंग ।
एक भीम थारा दत आगे,
खेत खेत खूटा खगंग ॥९॥

सीसोदा साभाव स देवत,
हाथां दत खग अडग हिये ।
कुल पेंतीस बिचां किण कीधी,
बंस हमीरां होड बिये ॥१०॥

भीमा बड़ त्यागी भू मंडल,
साख भरे आधो संसार ।
जूना सिध थारो दत जोतां,
तुरत पुरी केहा सु दतार ॥११॥
हूँ भामी सहजां बड़ हिंदू,
खट–तीसां ढ़ाकण खूमाण ।
छत्रपत अमर उदैपुर छाजां,
दन दूलह राजो दीवांण ॥१२॥

( रचयिता:-- अज्ञात )

अर्थ:—हे दानवीर खुमाण–वंशज राणा भीमसिंह ! तूने यश कर्ताओं के सिर पर आंक ( एहसान ) करते हुए, कार ( सीमा ) रहित समुद्र में भी दान के संकल्पित जल का मार्ग बना दिया ।

बीस कवि दान पाकर जाते हैं तो तीस कवि और आ उपस्थित होते है, हे महाराणा ! तेरे दान की प्रसिद्धि हो गई है । तेरे दान का संकल्पित जल इस प्रकार फैल गया है, मानो दसों दिशाओं में समुद्र छलक गया हो और तेरे दान की तरंगें इस प्रकार बढ़ चली हैं जैसे द्रौपदी का चीर बढ़ा हो ।

छोटी उम्र में ही तूने दान देने में वृद्धि की और आज भी तेरा उसी ओर चित्त सवाया बढ़ता रहता है । हे नराधिप ! कुबेर की संपत्ति का पार पाया जा सकता है, परन्तु तेरे दान का पार नहीं पाया जा सकता है ।

उदारता में आकर हाथी, घोड़े या लाखों की सम्पत्ति ही क्या ? बिना आनाकानी किये तू लंका तक को लुटा सकता है । कवि कहता है कि इस

प्रकार राणा भीमसिंह के समय को देखते हुए ( ऐसा लगता है मानों इसके आगे ) इन्द्र के सुख भी तुच्छ हैं।

प्रतिदिन भोजनोत्सव होते रहते हैं। जरदा, पुलाब आदि (मांस निर्मित खाद्य विशेष) में गुलाब जल डालने से सुगन्ध फैलती रहती है। बड़े २ पात्रों (कटोरों) द्वारा पँचरंगी धारा में मदिरा, मेघ की झड़ी के समान बरसती रहती है

( यहाँ ) मणि, माणिक और अमूल्य वस्त्र पहनने को मिलते हैं, राजसी सुख प्राप्त होता है। ( वास्तव में ) जिसने पूर्व जन्म में तपस्या की है वही महाराणा की चरण-सेवा में रहने का अवसर पाता है।

द्वार पर घोड़े हिन-हिनाया करते हैं और शृंखलायें खनखनाते हुए खंभों से बंधे हाथी मस्त होकर झूमा करते हैं। इस प्रकार राणा भीमसिंह ने कवियों के प्रत्येक घर में अन्य राजाओं के समान वैभव कर दिया।

अरिसिंह के पुत्र ( राणा भीमसिंह ) के ऐसे उदार कार्य देख कर अन्य राजाओं का अभिमान दूर हो गया। यद्यपि समुद्र में से जवाहरात ( रत्न ) समाप्त हो गये, किन्तु ( हे राणा! ) तेरे दान का तंतु (सिलसिला) नहीं टूटा।

कच्छी, काबुली, धाटी और काठियावाड़ी घोड़े जो हिरणों को जा पहुंचते हैं ( हरिणों की बराबरी करते हैं ), वे ( घोड़े ) अब उन देशों में नहीं रहे, क्योंकि तूने सब दान में दे डाले हैं।

हे शिशोदिया राणा ! तू स्वभाव से ही देव-तुल्य है। तेरे हाथ, दान और कृपाण से सुशोभित रहते हैं और इन दोनों बातों में तेरा हृदय भी अड़िग ही रहता है। यही कारण है कि, अन्य छैतीसों क्षत्रिय वंशों में राणा हमीर के वंश की बराबरी कोई नहीं कर सका।

हे महाराणा भीमसिंह ! तू इस भू-मंडल पर बड़ा त्यागी है। इस बात की साक्षी सारा संसार देता है। हे पूर्वकालीन ऋषि ! तेरे दान को देखतेहुए, तेरे समक्ष 'तुरुडुत' पुरी के राजा-गण ( चन्द्रगुप्त आदि ) कुछ भी नहीं है।

हे हिन्दुओं में प्रमुख खुमाण-वंशज, भगवान एकलिंग के दीवान ! तू हमेशा दुलहा बना रहने वाला है। कवि कहता है— मुझे विश्वास है कि,

छःतीसों वंश के क्षत्रियों की इज्जत एक मात्र तू ही रखने वाला है। अतः तू इन उदयपुर के राज-महलों में सदा अनुपम रूप से सुशोभित होता रह।

## [७८] महाराणा भीमसिंह की उदारता

गीतः- ( छोटा साणोर )

पडतां जस वास पार कुण पावै,
दन-दातार हमीर- दुवा।
भूप, वार-थारी भेमा जल,
हाथी घर घर बार हुवा ॥१॥
हेंदू नाथ मणा नहँ हाथां,
जण जण ऊपर-मातां जाल।
पातां घणे ठेकाणे पूगा,
सीसोदा वाला सूंडाल ॥२॥
बगसे गाम लंक-वरदाई,
पहुंचाई कीरत दध-पान।
राण पास आय कुण रहिओ,
कुंजर वण पाया कवराज ॥३॥
अड़साणी कुल भाण उजाला,
मौजां झड़ वाला मघवाण।
देस देस पूगा दंताला,
दतवाला थारा दइवाण ॥४॥

( रचयिताः- अज्ञात )

अर्थः- हे दूसरे राणा हमीर (भीमसिंह)! तेरे यश का पाठ घर घर होता है, किंतु इसका पार कोई भी नहीं पा सकता। हे राणा भीमसिंह! तू हमेशा के लिये उदार है। तेरे शासन-काल में प्रत्येक के द्वार पर हाथी बांधे गये।

हे हिन्दु-पति शिशोदिया राणा ! आपके हाथों में ( किसी तरह की ) कमी नहीं है। आपने प्रत्येक कवि के लिये जो मस्त हाथी वितरित किये हैं, वे उन कवियों के घर जा पहुँचे ( कवियों ने घर बैठे हाथी प्राप्त किये )।

लंका को दान में देने वाले ( राम ) के यश को धारण करते हुए राणा ( भीमसिंह ) ने ग्राम दान में दे दे कर अपनी कीर्ति समुद्र के दूसरे तट तक पहुँचादी है। ऐसा कौन कवीश्वर है, जिसने समीप आकर दान में हाथी नहीं पाया हो ( सूना लौट गया हो ) ?

हे वंश के प्रकाशक सूर्य, एकलिंग के दीवान, अरिसिंह के पुत्र ( राणा भीमसिंह ) ! तेरी उदारता, इन्द्र की झड़ी ( बरसात ) की तरह है। तेरे द्वारा दान में दिये गये हाथी ( कवियों के पास ) प्रत्येक देशों में पहुँच गये हैं।

### [७६] महाराणा भीमसिह की उदारता

गीतः- ( बडा साणोर )

क्रतब रांण भीमेण लाखां, श्रवण रोकड़ां,
नोखड़ां भड़ां पातां नवाजे।
वहत-धर-फरत प्रापत्त नव बोकड़ा,
गोखड़ां गोखड़ां गयँद गाजे ॥१॥
सहँस सो श्रवण सीसोद लहरी-समँद
खत्रि जस रहस प्रथमी बखाणा।
मांगिया अजा सुत पैंगलां नहँ मले,
ठड़हड़ै मैंगलां खंन ठाणा ॥२॥
बजाई हमा-सत सीह ताला-बलँद,
मोज लख श्रवण दन प्रत तमांसा।
अजा नहँ झूंपड़ी जकारै अँबारा,
खंबारा ही डुलै गयँद खासा ॥३॥

कोड़ देवाल जुग–कोड़ राजस करो,
चक्रवति किया कव प्रथी चावा।
पोल पर वाह अत–राज जम समापे,
छोल पर बाज गज–राज छावा ॥४॥

( रचयिता:– 'अज्ञात' )

अर्थ:—महाराणा भीमसिंह का एक यही कर्तव्य-पालन रहा है कि, वह लाखों रुपये पुरस्कार में दे देकर अनोखे ( अच्छे ) सामन्तों एवं कवियों को निभाते रहा। समूची पृथ्वी घूमने पर भी जिन्हें ( पुरस्कार-स्वरूप ) बकरा तक नहीं मिला, उनके यहां झरोखे के नीचे बँधे हुए हाथी गरजा करते हैं।

वह शिशोदिया-राणा उदारता में तरंगित समुद्र के समान है, जो सहस्रों रुपये देता रहता है ( खूटते ही नहीं है )। संसार में प्रसिद्ध है कि, यही एक यश के रहस्य को जानने वाला है। पिंगल में काव्य रचना करने वाले जिन कवियों के मांगने पर बकरे तक नहीं मिलते थे, उनके द्वार पर ( आज ) गज-शालाओं में कुंभाले से बँधे हुए हाथी श्रृङ्खलाओं को खनखनाते रहते हैं।

यह राणा हमीर का पुत्र ( भीमसिंह ) दूसरा ही भाग्यशाली राणा सांगा है, जो उत्साहित हो हमेशा लाखों का दान करना खेल ही समझता है। जिनकी झोंपड़ी पर बकरी तक बँधी हुई नहीं देखी, वहां बड़ी २ इमारतें बन गई हैं और इन इमारतों के तले कुंभालों से बँधे हुए हाथी झूमने लग गये हैं।

करोड़ों का दान देने वाला यह राणा करोड़ों युगों तक राज्य करता रहे, यही हमारा आशीर्वाद है। संसार में इसकी प्रसिद्धि है कि इसने कवियों को ( वैभव में ) चक्रवर्त्ती के समान बना दिया है। धन्य है इसे, जिसने द्वार पर आए हुए कवियों को, उत्साहित हो बकरों के समान समझते हुए अच्छे २ हाथी घोड़े दे दिये।

## [८०] महाराणा भीमसिंह की उदारता के विषय में भगवान से ब्रह्मा का निवेदन

गीत ( छोटा साणोर )

कर बेहूँ जोड़ विधाता कहियो, काम खोच बांधो करतार।
भीम दिवाण अगै नर-भवणे, लगे न अखरे जोर लगार ।।१।।

काम ब्रह्मा हूँ लखूं जकारे, क्रम काला कर कलम करे।
ऊंरे दिया अरसी-नँद आला, गज काला हिंडल-गरे ।।२।।

देऊँ राज हूँ जका कहे दुज, खोस राज रंक करे खल।
राकां राव करे भीम राणो, आंकां मटी प्रजाद अल ।।३।।

बकरी बाज बाँदा जा बारण, धारण खेतां गाम-धर।
अवलो बेल करे सवला अँक, हेल-हमीर हमीर-हर ।।४।।

कटियो ब्रह्म येह कर कांमो, वाद न कामो छोड़ो वांक।
ईषर आगेइ दीध परखिया, लखियां बना भभी खण लांक ।।५।।

आँस रांम अवतार भीम अल, प्रतपो अबचल पाण पथ।
चक्रवत दुजूइं कीध बलँद चत, सुरसथ लछमी एक सथ ।।६।।

( रचयिता:- अज्ञात )

अर्थ:—दोनों हाथ जोड़ ब्रह्मा ने ईश्वर से कहा हे प्रभु! काम का ठीक तरीका बांध दीजिये, क्योंकि महाराणा भीमसिंह के कारण नर-लोक (मर्त्य लोक) में मेरे द्वारा अंकित अक्षरों का वश नहीं चलता।

मैं, ब्रह्मा का पद लेकर अपने हाथ की कलम से जिसके भाग्य में काले अक्षर ( बुरा ) लिख देता हूँ, उसे राणा अरिसिंह का पुत्र झूमते हुए काले हाथी दे देता है ( मेरे द्वारा अंकित भाग्य-लिपि की मर्यादा भंग कर देता है )।

मैं जिसे बड़ा मान कर राज-पद दे देता हूँ, उसे राणा भीमसिंह अपना शत्रु समझ राज्य छीन लेता है और रंक बना देता है, इसी प्रकार जिसे मैं रंक बनाता हूँ, उसे वह राजा बना देता है। इस तरह मेरे द्वारा लिखे अंकों ( भाग्य लिपि ) की मर्यादा पृथ्वी से हट रही है।

मैं जिसके द्वार पर ( भाग्य में ) छेरी ( बकरी ) लिख देता हूँ, वहां राणा हमीर का वंशज * 'हेलाहमीर'-सा दानी होकर घोड़े बांध देता है। मैं जिसे खेती के लिये खेत देता हूँ, उसे वह ग्रामाधिप बना देता है। इस तरह वह निर्बलों की सहायता करता हुआ उनके भाल पर सबलता के अंक स्थापित करता है।

उत्तर में ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मा! तुम अपना कार्य करते रहो। तुम्हें इस निकम्मे वाद-विवाद एवं ( फिजूल के ) दर्प को छोड़ देना चाहिये। क्यों कि, इस वंश में पहले से ही इस प्रकार देते लेते रहे हैं। तुम जानते ही हो कि विभीषण के भाग्य में लंका का राज्य नहीं लिखा था, फिर भी राम ने लंका का राज्य उसे दे दिया ( तुम्हारी मर्यादा मिटा दी )।

उसी रामचन्द्र का आंशिक अवतार राणा भीमसिंह है। वह उदारता के पथ पर अटल रूप से तपता है। उस उदार हृदय वाले ने अनेकों को चक्रवर्ती ( राजा ) बना दिया। सरस्वती एवं लक्ष्मी ( धन ) एक साथ नहीं रहतीं, उन्हें एक ही स्थान पर साथ २ बसा दिया है।

## [८१] महाराणा भीमसिंह की कृपाण और दान से शोभा

गीत ( छोटा साणोर )

महपत भीमेण वड़म मोताहल, पोरस मर मोभा पर त्रांण।
तांहरे अंग ओपे अड़सी तण, रज-वट रा आबूखण राण ॥१॥

*टिप्पणी:— पहले हमीर चौहान एक राजा हुआ है। वह निश्चल एवं उदार हृदय का था, बड़ा दानी था। उसीके नाम पर " हेला हमीर " एक उपाधि-शब्द बन गया; जो दानवीर का पर्यायवाची माना जाता है।

लोहां वगां पांय लज-लंगर, दियणो गज बोहां पर दाव ।
जूना थावे नहीं ज़गां-जग, वणिया दत खग तणा तणाव ॥२॥
पांण कड़ा खत्रियां भ्रम पाणी, अड़साणी भुजबंद आपाण ।
दूजा जगड़ अदावां दहगो, खाग त्याग गहणो खुमांण ॥३॥
वय सणगार अग्रीड़ो वणियो, अणगंजी चत्र कोर अल ।
बापाहरा जगत सूं बदतो, कलमां-पतसूं अनम कल ॥४॥

( रचयिताः- अज्ञात )

अर्थः— हे राणा अरिसिंह के पुत्र राणा भीमसिंह ! पौरुष से चमचमाता हुआ तेरा ललाट शोभायमान रहता है । ( इसीलिये ) तेरे अंगो पर रजवट ( रजपूती वट ) के आभूषण शोभा पाते हैं ।

तुम, शस्त्र चलने पर पैरों में लज्जा के लंगर डाल कर ( क्षात्र धर्म की लाज रखते हुए ) हाथियों पर दाव देते हो ( वार करते हो ) । तुम्हारा यह अलौकिक (वीरता का) बाना (शृंगार) युगों तक पुराना होने वाला नहीं है ।

खुमाण वंशज, हे अरिसिंह-पुत्र ! जिन पर दाव नहीं दिया जाता ऐसे दुश्मन को जलाते रहने वाले, दूसरे ही राणा जगतसिंह के समान तू सुशोभित है । अतः क्षात्र-धर्म और कांति ही तेरे हाथों के कंकण एवं बल तेरा भुजबंद है । यह दान तथा खड्ग सम्बन्धी गहने तेरे लिए अमूल्य हैं ।

हे बापा के वंशज ! तेरे शरीर पर यह अद्भुत शृंगार सजा हुआ है । यही कारण है कि चित्तौड़-भूमि अन्य से नहीं दबाई जाने योग्य कही जाती है । तुम्हारा घराना ( खानदान ) भी इसीसे संसार में विशेषता प्राप्त किये हुए है कि, वह बादशाहों के आगे सदा से नहीं झुकने वाला है ।

## [८२] महाराणा भीमसिंह का यश वर्णन

गीत ( छोटा साणोर )

बापा जगतेस उजालण बरदां, हातां लाख ब्रवण हम वीर ।
अड़सी नँद सारी जग ऊपर, नदियां सुजस चलावण नीर ॥१॥

धवतां दान सुजल छत्रधारी, सातूं समदां हूँत सरे ।
कीरत तणी नदी चहुँ कांनी, करती गोड़ वहार करे ॥२॥
अंद्र जेम वरसे दत आचां, कथ या आलम कलम कहै ।
सीसोदा थारी जस सलता, वरछ सूम तोड़ती वहै ॥३॥
भीमा अंद बरद जुग भाखै, धर हिंदवाणी तणा धणी ।
लहरां वहे गयण सूं लागी, तूज नहर जस वास तणी ॥४॥

( रचयिता:—अज्ञात )

अर्थः—हे महाराणा अरिसिंह के पुत्र ( भीमसिंह ) ! तू बापा और राणा जगतसिंह के विरुद ( यश ) को उज्वल रखने वाला है ! अपने हाथों से लाखों का दान देने वाला है। तू समस्त संसार पर अपनी यश सरिता को प्रवाहित करने वाला है।

हे छत्रधारी ! तेरे दान देने का संकल्प-जल सातों समुद्रों के जल से श्रेष्ठ है। तेरी यश-सरिता ध्वनि करती हुई बहती रहती है।

हे शिशोदिया-राणा ! तेरे हाथों से दान-वर्षा इन्द्र द्वारा मेघ वर्षा के तुल्य होती रहती है। तेरी यश-सरिता वृक्ष-रूपी कृपणों ( कंजूसों ) को उखेड़ती हुई बहती है। इसकी साक्षी संसारके विद्वानों की लेखनी देती है।

हे हिन्दुओं के भू-भाग के स्वामी राणा भीमसिंह ! संसार तेरे यश का उच्चारण करते हुए ( गाते हुए ) कहता है कि, तेरे यश- सरोवर की नहर ( नाले ) की तरंगें उठ उठ कर आकाश को स्पर्श करती रहती है।

## [८३] महाराणा भीमसिंह का यश-वर्णन

गीत (छोटा साणोर)

अड़सी महाराण प्रथीपत आला, आचां लहर बंबाल़ा एम ।
बाजे हद प्रथमाद बिचाल़ा, जस थारो घड़ीयाल़ा जेम ॥१॥

भलो भीम आलम जस भणावे, ऊफणवे रीझां अप्रमाद ।
जड़े जाट डाके जिण हणावे, निसि दिन री गणवे रो नाद ॥२॥
अस गज घघट अघट आलर रो, वेला समंद मालर रो वाद ।
हाको हुवे सुजस हालर रो, अब धाती झालर रो साद ॥३॥
सरसातां श्री राण सबोलो, पोलो हाथां झगड़ पणो ।
मीठे सबद बजे घण मोलो, तोलो चोसट घड़ी तणो ॥४॥
नित्त नित्त मुख सुजस नरालो, पातां घर चालो भरपूर ।
घड़ी घड़ी ठहके घड़ियालो, दरबारां वालो दसतूर ॥५॥

( रचयिताः– अज्ञात )

अर्थः—हे महाराणा अरिसिंह के पुत्र ! तेरे हाथों की हिलोर ( उमंग ) समुद्र की तरंगों के समान है। पृथ्वी पर तेरा यश-नाद घड़ियाल की तरह बजता रहता है।

हे भमसिंह ! संसार तेरे निर्मल यश का गान करते हुए कहता है कि राणा प्रमाद रहित होकर उदारता के लिए उमड़ पड़ता है। प्रत्येक जिह्वा ( जुबान ) जबड़े ( तालु ) से लगी हुई डंके के रूप में होकर चलती है और रात दिन तेरे यश-नाद को घड़ी का रूप दे देती है।

हाथी, घोड़े एवं स्थायी भूमि के दान के संकल्पित अथाह जल का प्रवाह समुद्र का उफान-समय-सा ध्वनित होता है, जो ऐसा मालूम होता है मानों तेरे यश का सब धातुओं से बना घड़ियाल बज रहा हो !

हे महाराणा ! तेरे मृदु-भाषण से सरसता टपकती रहती है। तेरे दोनों हाथों में दान देते समय ( कौन अधिक देता है ? ) इस बात का झगड़ा मचा रहता है। इसीसे तेरे यश गान का मधुर शब्द, बहुमूल्य चौसठ घड़ी की सूचना देने वाले घड़ियाल-सा ध्वनित होता है।

तेरे नित नये निराले यश गान की रचना का ही कवियों के घर में एक मात्र विशेष काम-सा होगया है। उनके यहां घड़ी २ में तेरे यश गान की घड़ी बजती रहने से उनके द्वार की शोभा राजद्वार-सी दिखाई देती है।

## [८४] यश–प्रिय महाराणा भीमसिंह

गीत

विध विध रा सुकव गांधिया बलावा ।
करी काछियां रीझ कर ॥
रांण हेक भीमेण खरीदै ।
अत मूंघो स–सबद अतर ॥१॥
महपतियां दूजां नहँ मोसर ।
सुत अरसी रीझरो सली ॥
कुल जग में लेवाल न कोई ।
गढ़ गढ़ पीनस गली गली ॥२॥
गरज बसेख समझियो गाहक ।
सादो कियो अवेर सत ॥
करड़ी बखत रांण बण लै कुण ।
सुगँध क्रीत रुड़ी बसत ॥३॥
जस लीधो गुलआब अेजबी ।
खस बोही रीधौ नव खंड ॥
गज सांसण दे दे संग्रहियो ।
मह महियो सारे ब्रहमंड ॥४॥

( रचयिता:–अज्ञात )

अर्थ:—( राणा भीमसिंह ने ) हाथी, घोड़े प्रदान करके गंधी-रूपी कवियों को पास बुलाने की एक युक्ति सोच निकाला और इसी युक्ति के द्वारा गंधी-रूपी कवियों के निकट आ जाने पर राणा ने एक मात्र यश-रूपी महँगा इत्र खरीदा ।

हे महाराणा अरिसिंह के पुत्र ! अन्य राजाओं को ( तो ) अवसर ही नहीं मिलता है कि, वे यश-रूपी इत्र का एक सली भर फोहा भी खरीद सकें।...और न कोई ऐसा खरीददार कलियुग में कहा ही जा सकता है; क्योंकि प्रत्येक दुर्ग के स्वामियों को कोने २ में खोज डाले हैं; परन्तु उन सबों को फिन्नस ( नासा-रोग ) होगया है ( नाक में रोग आने पर वे इत्र खरीद कर ही क्या करेंगे ? )।

गंधी रूपी कवियों ने ऐसा इत्र चाहने वाला देखकर ही तुझे ग्राहक माना है। इसीलिए उन सबों ने इस तत्व का संग्रह किया है। हे राणा ! ऐसे कठिन ( महँगे ) समय में तेरे अतिरिक्त कौन ऐसा व्यक्ति है, जो ऐसी सौरभ-मय सुन्दर कीर्ति को खरीदें ?

तू ने इस अनुपम गुलाब के इत्र रूपी यश को खरीदा, जिसके सौरभ से नवों खण्ड प्रसन्न होगये हैं। तू ने हाथी और भूमिदान दे-देकर इस (यश रूपी इत्र) को इकट्ठा किया है, जिसकी महक सारे ब्रह्माड में फैल गई।

## [५८] महाराणा भीमसिंह के द्वारा घोड़ी देना

गीत

दना थोड़ी चोड़ी उराटां डी घोड़ी बेग बँधे दोड़ी,
तोड़ी फेट लागां गढ़ां कोड़ी मोली तेण।
मोटोड़ी चमम्मां मालग्राम जोड़ा गजां मोड़ी,
भाणवां आछोड़ी घोड़ी वरीसी भीमेण ॥१॥
ठेलणी अरिंदां छंदा प्रलंबा हलेणी ठेका,
पोह वीजा न लेणी साले पूर पांण।
काछ री मलेणी मगां तुजीहां घलेणी कंधा,
दीधी झंफ लेणी पातां वलेणी दिवाण ॥२॥
जाय कोट उलंघी पलंगी ताथ गंगी-जला,
बितंगी भिडंगी लाहां भरे सांगी बाव।

रीझंगी उमंगी देव अंगी आप रंगी राखे,
पंगी काज कीधि चंगी पमंगी प्रसाव ॥३॥
देह री विसाला रूप रसाला दुसाला दना,
चाला सुखपाला उरां ढाला कंध चांप ।
कोयणां गुलालां वालां वाह रे देवाल काला,
आला ताला करेती विलाल वत्री आप ॥४॥

मोडांण तछेरी बना पछेरी उडांण मागां,
तलफ्फां मछेरी जंत्रा रछे री तियार ।
गजंदी गछेरी लीधी खरीदी लछेरी गजां,
अछेरी कछेरी कीधी बछेरी आचार ॥५॥

नचे थालां ऊपरां सँगात तालां त्रताकारो,
आलमां जहांन धावां बदीती अमाप ।
उडंडाणी आव जावा फरीती स रीती आड़ी,
झालियां परीती चीती लीधी जांण झांप ॥६॥
लूंबी छूना नागणी सी लूंबी याल लटां वाली,
ऊपनी असल्ली खेत धरा वाली एम ।
असी ऊठ लागां रान उडूं झटां पटां वाली,
ताली पूठ वागां नारी नटां वाली तेम ॥७॥

भड़ज्जी रूपकां रीझ आय जादी दीधी भूरे,
पंगी चाह जादी रीधी पूगी सध पाज ।
लगाय भूखणा ताय जादी, खोल बारे लीधी,
सायजादी लड़ा लूंब कीधो साज बाज ॥८॥

माती ए्र ताती ससी दोज री सारसी मुखां,
एरसी न धारे भूप चोज री अबार ।
बापो भीम पाबू री सी कांलबी भोज री बोली,
समापी मोजरी घोड़ी फोजरी सँगार ॥६॥

( रचयिता:– 'अज्ञात' )

अर्थः—नई उम्र की, चौड़े सीने वाली, ऊंची पूरी, वेग से दौड़ने वाली, टक्कर से दुर्गों को ढहा देने वाली, करोड़ मूल्य की, शालिग्राम की युगल मूर्ति-सी बड़ी २ आंखों वाली और टक्कर देकर हाथियों के मुँह को मोड़ देने वाली जो घोड़ी थी, उसे महाराणा भीमसिंह ने कवि को पुरस्कार स्वरूप दे दी।

शत्रुओं को ढकेल देने वाली, अच्छे ढंग से लम्बाई पर कूदने वाली जिसे अन्य नहीं पहुंच पाते ( बराबरी नहीं कर पाते ) उन्हें परिपूर्ण वेग से खटकने वाली, कच्छदेशीय या माल्हानी खानदान की, धनुषाकृति कंधों वाली और उड़ान लेने वाली जो घोड़ी थी, उसे एकलिंग के दीवान ( राणा ) ने कवि को दे दी।

दीवालों को लाँघ जाने वाली गंगा के प्रवाह की बराबरी करने वाली, दो तंगों से कसी हुई, उत्साह (उमंग) से भरी हुई, पवन की संगिनी-सी और चंगी ( नीरोग ) घोड़ी थी, उसे देव-तुल्य शरीरधारी और रंग में रंगे रहने वाले उदार हृदय राणा ने कीर्ति के लिए, खुश होकर (कवि) दे दी ।

विशालकाय, सुन्दर रूप वाली, दो वर्ष, चलने में पालकी के समान सुखद, ढाल की तरह उभरे हुए वक्षस्थल वाली, धनुष-से कंधों वाली, उछलती कूदती चलने वाली जो घोड़ी थी, उसे गुलाबी आँखों वाले, उदार हृदय एवं आपत्काल में सहायक राणा ने ( कवि को ) दे दी।

बिना सींगों वाली हरिणी के समान, बिना पंखों के ही उड़ने वाली अन्तरिक्ष से उतरे हुए मत्स्य ( मत्स्यावतार )-सी तड़फने वाली हथिनी-सी चंगी

और लाख हाथियों के मूल्य में खरीदी जा सकने वाली कच्छ देशीय जो सुन्दर घोड़ी थी, उसे राणा ने ( कवि को ) दे दी।

संगीत के ताल के अनुसार थाली में ( चारों पैर रखकर ) नाचने वाली समस्त संसार द्वारा, अपार धावा ( मंजिल को पार ) करने योग्य कही जाने वाली, पिछले पैरों पर ही इधर उधर फरेती ( अश्व क्रिया ) की रीति से दौड़ने वाली, शीघ्र ही मुड़ने एवं झपटने वाली और प्रेम विह्वल परी-सी घोड़ी थी, उसे राणा ने कवि को दे दी ।

नागकन्या ( नागिनों )-सी लटों ( अयाल ) वाली, असली घटा ( क्षेत्र ) से उत्पन्न, रान ( जंघास्थल ) के छूने ही चट से उड़ने वाली, पीछे की ओर ताली बजाते ही नर्तकी-सी ( नाचने वाली ) घोड़ी थी, उसे राणा ने कवि को देदी ।

कविता पर विशेष प्रसन्न होकर इस युवक ( राणा ) ने घोड़ी दी, जिससे इसकी ऋद्धि से पैदा हुई, कीर्तिकुमारी इच्छापूर्वक समुद्र के पार पहुंच गई। उस ताजी खानदानी नई घोड़ी को गहने पहना कर ठान ( हय-शाला ) से बाहर लाकर इस प्रकार सजाई मानो किसी शाहजादी का शृंगार किया हो।

इस मतवाली घोड़ी में विशेष वेग है। इसकी मुँह-फाड़ ( मुँह का अगला भाग ) के चन्द्रमा की तरह है । यह मानो पाबू राठोड़ की 'कालवी' एवं राजा भोज* के लिये सवारी की 'बोली' नामक घोड़ी है, जिसे आज दूसरे राजा ( घोड़ी पर बैठने के ) इच्छुक होते हुए भी खरीद नहीं सकते हैं, मानों खरीदना उनके भाग्य में ही नहीं लिखा है। यह घोड़ी सेना का शृंगार कही जाती है। महाराणा भीमसिंह को धन्य है, जिसने उदारता-पूर्वक ऐसी घोड़ी दान में दी।

*पंवार वंशीय अथवा 'बगड़ावत' वंशीय भोज

## [८६] धर्म रक्षक महाराणा भीमसिंह

गीत

वसव चोवला कळू- नासत पवन वाजतां ।
नर-खट-तीस आसत न लाधी ॥
सरम हिंदू धरम तणी सीसोदिया ।
बाप थारे गल्ने-आण-बाँधी ॥१॥
खेड़-पत कुरंभा गोड़ हाड़ा खिती ।
समजती नथी कुल वट सनीमां ॥
तांण री ऊँच धारी अडग उड़स तण ।
भुजां हिंदुवाण री लाज भीमा ॥२॥
विस्व पुरव पछम दखण उतराध विच ।
साख पैंतीस वट तजे अवसांण ॥
मढा गहलोत-गुर गले थारे मरद ।
खित धरमपणा री-अड़प खूमांण ॥३॥
जुगादी जोध जोगीन्द्र जारी-जहर ।
तूझ वण अवर कुण गयण तोले ॥
धणी चीत्तोड़ खटतीस कुल ढांकिया ।
एक भीमेण भुजडंड ओले ॥४॥

( रचयिताः- अज्ञात )

अर्थः- पृथ्वी पर चारों ओर नाशकारी कलियुगी पवन चलने से छःतीसों क्षत्रिय-वंशों का विश्वास न रहा ( कि, अब वे हिन्दू धर्म को बचा सकेंगे ); परन्तु जनता के पितृ तुल्य हे शिशोदिया-राणा ! हिन्दू-धर्म की लज्जा को तूने ही ऊँचे और अडिग रूप में भुजाओं पर उठा रखी है (हिंदुत्व को नहीं डुबोया)।

हे राणा अरिसिंह के पुत्र भीमसिंह ! जब कमधज ( राठोड़ ), कछवाहे, गौड़ एवं हाड़े आदि पृथ्वी-पतियों में कुल-वट ( अपने वंश का स्वाभिमान ) और मर्यादा नहीं दिखाई देने लगी तब हिन्दुओं की लज्जा ने एक मात्र तेरी अडिग एवं उच्च भुजाओं का ही आसरा लिया ( हिन्दुत्व डूब न सका )।

पृथ्वी पर पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं के अन्य छैंतीसों वंश के क्षत्रियों ने जब वह ( स्वाभिमान ) छोड़ दिया, तब हे खुमाण वंशज वीर गुहिलोत-पति ! क्षात्र-धर्म की टेक ( बाजी ) तेरे गले से ही लगी ( तेरा ही आसरा लिया )।

हे वंश परम्परा के योद्धा, विष को पचा जाने वाले योगीन्द्र स्वरूप ( राणा भीमसिंह ) ! आसमान को उठाने जैसा यह काम कौन कर सकता है ? हे चित्तौड़-अधिपति ! एकमात्र तूने ही अपने बाहु-दंडों की आड़ में छःतीसों वंश के क्षत्रियों को ढँक लिया है ( उनकी लज्जा रखली है )।

## [८७] अतुलनीय महाराणा भीमसिंह

गीत

वखधर–धर–जोग वमन छप बैठा, आप रखी भग महम सुरेस ।
अरक चंद नत परत पयाणां, नकळंक राणा भीम नरेस ॥१॥
महण–खार गवरी–सुत–गज–मुख, जड़ता अंग कल पत्रछ जाण ।
पसू–धेन गुण पारस पत्थर, दीजे की ओपम दीवाण ॥२॥
पवन अदीठ गगन वण प्रतमा, तेज सोम जळ नीची तांण ।
जमी पात्र जळ अंतर जामी, भामी त्रमल हिंदवा भांण ॥३॥
तम सत सक्रत रेण कर सीतल, बारध गण तर गोहिम बाप ।
धावण (अळ) प अकाश न.रधर, आता (अग) नर दूसण आप ॥४॥
(सुत) अड़सी जगतेस दूसरा, साहां–ग्रह–मोखण भुजसार ।
पापीयां राय पीयाग प्रथीपत, कलक्यां राय तणा केदार ॥५॥

( रचयिता:– अज्ञात )

अर्थः— शिव विषधर हैं, विष्णु अदृश्य हैं, इन्द्र ऋषि गौतम द्वारा अभिशप्त होकर सहस्रभग है और सूर्य चन्द्रमा अस्थिर हैं। इस प्रकार उपर्युक्त सब दूषित हैं। केवल निष्कलंक है, तो एक महाराणा भीमसिंह ही।

समुद्र खारा है, गणेश गजमुख (कुरूप) हैं, कल्पवृक्ष जड़ है, कामधेनु पशु है और पारस की गिनती पत्थरों में है; (तब बालों) इस शिव के दीवान (राणा) की तुलना किस के साथ की जाय ?

पवन अदृश्य है, गगन आकार रहित (शून्य) है, चन्द्रमा तेज हीन है, जल की निम्न गति है. पृथ्वी पात्र रूप में हैं अर्थात् उसमें भली बुरी सब चीजें समाई जा सकती हैं और वामन भगवान स्वयं छली है (तब कहना पड़ता है कि) हिंदू-सूर्य महाराणा ही सब प्रकार से पवित्र हैं।

तमो गुण एवं सत्व गुण अपने नाम के सदृश ही (अधिक तेज व अधिक शीतल) कर्म कराते हैं (जो दोनों हानिप्रद हैं इसलिये अधिक तामसी व शिथिल होना अच्छा नहीं है)। चन्द्रमा शीतल है, समुद्र गहरा होते हुए भी रसातल तक पहुंचा हुआ है, हिमगिरि भाप बन कर नष्ट हो जाता है, बादल कुछ समय के लिये आकाश में दौड़े फिरते हैं (थोड़े समय के लिये वे सम विषम बरसते हैं); परन्तु हे महाराणा ! आप उपर्युक्त सब दूषणों से वंचित हैं।

हे राणा अरिसिंह के पुत्र ! आप दूसरे ही जगतसिंह हैं। आपके श्रेष्ठ वंश-विरुद भुज-बल से बादशाहों को पकड़ कर छोड़ देना, पतितों के लिये प्रयाग और कलंकियों के लिये केदार तीर्थ कहे जाते हैं। यह सब आपको फबते हैं (सुन्दर लगता है)।

## [८८] महाराणा भीमसिंह की उदारता का परिचय

गीत (छोटा साणोर)

प्रथम क्रम चढ़िये भुमिये गणपत, पंचाननरे वृखभ पलांण।
हंस भ्रम इन्द्रतणे हाथियो देवा नहँ पारथियो दीवाण ॥१॥

विहु भैरव तणे साला अख, वळै सगत नाहर असवार ।
मच्छ मनोज मोर खट-मुख रे, हुवो न राणा भीम जुआर ॥२॥
रेणा पिनँग पिनँग रे क्रूँरभ, कूँरँभ रथ बाराह किया ।
चीत्तोड़ो त्रप बिगर जाचिया, तुरँगा हूँस न मटे तिया ॥३॥
अपहड़ ऊनड़-हेम अड़सी रो, तसां उरड़ क्रन ऊंची ताण ।
उपजे उरां तुरां असवारी, भेटो सुरां हिंदवो भांण ॥४॥

( रचयिताः- अज्ञात )

अर्थः— देवताओं के अग्रगण्य गणेश का चूहा ( मूषक ), शिव का वृषभ, ब्रह्मा का हंस और इन्द्र का हाथी वाहन है । कवि कहता है कि, देवताओं ने, शिव के दीवान राणा से ( अश्व-वाहन के लिये ) प्रार्थना नहीं करके भूल की ( प्रार्थना करने पर इन्हें चूहे आदि क्षुद्र वाहनों पर नहीं बैठना पड़ता ) ।

दोनों भैरवों ( काले गोरे ) के वाहन कुत्ते, शक्ति का वाहन सिंह, कामदेव का मत्स्य इसी प्रकार षड़ानन का वाहन मयूर है । इससे जान पड़ता है—इन देवताओं ने ( अश्व के लिये ) राणा से वंदना नहीं की ( अन्यथा वह इन्हें अवश्य वाहन के लिये अश्व दे देता ) ।

पृथ्वी शेषनाग पर है, शेषनाग कच्छप पर और कच्छप बाराह पर स्थित है । कवि कहता है कि, चित्तोड़-स्वामी से बिना याचना किये उनकी अश्ववाहन की इच्छा पूरी नहीं हो सकती ।

हे देवताओं ! यदि घोड़े पर बैठने की हार्दिक इच्छा हो, तो राणा अरिसिंह का पुत्र जो इस समय हिंदु-सूर्य है और उदारता के लिये सुमेरु पर्वत के सदृश जिसके हाथ उठे हुए हैं, उससे जाकर मिलो ( वह अवश्य तुम्हारी इच्छा-पूर्ति करेगा ) ।

### [८६] महाराणा भीमसिंह का महत्व

गीत ( सुपंखरो )

मथां महेस जनंजे राण, तुरां सपताम मोहै ।
धात में चमीर नाणां संस, हरण धींग ॥

गजां ऐरापती, ग्रहां आदीत, सुमेर गिरां
सुरां सुरा पती ज्यूं नरिंदां भीमसींघ ॥१॥
गुणां एक दंत बेदां धनंत्र, सात की गणा।
बेदां सामवेद ज्यूही भाषा देव-बांण ॥
आकास तत्ब्वा तारां रांकेस अक्खरां ओ३ं ।
देवतरू तरां येम दातारां दिवाग ॥२॥
जुधां भीम सेण, सांच जुबांन पंहुवां जेठी।
धरा दान देत्रै बली, भंडारां धनेस ॥
बेद व्यास रिखा, रामचंद्र ज्यूं सुरज बंसां।
जादू बंसां कांन, ज्यूं बजाई जगतेस ॥३॥
गीता ज्ञान ग्रंथां लोकां बैकूंट, तीरथां गंगा।
राजीव कुसंभां अने खगां पंख-राव ॥
ओपमा दयंतां तूझ गुणा रो न पार आवै।
सरोमणां सरोमणी ऐरसी सुजाव ॥४॥

( रचयिताः—अज्ञात )

अर्थः— सिद्धों में महेश, तीरंदाजों में अर्जुन, घोड़ों में श्वेताश्व, धातुओं में स्वर्ण, सर्पों में शेषनाग, युद्ध-कर्ताओं में हनूमान, हाथियों में ऐरावत, ग्रहों में सूर्य, पहाड़ों में सुमेरु और देवताओं में जिस प्रकार इन्द्र है, उसी प्रकार राजाओं में महाराणा भीमसिंह हैं।

गुणवानों में गणेश, वैद्यों में धन्वतरी, सैन्य समूह में सात्यकि, वेदों में सामवेद, भाषाओं में देववाणी ( संस्कृत ), तत्वों में आकाश, ताराओं में चन्द्रमा, अक्षरों में ॐ ( ओऽम् ), और वृक्षों में कल्प-वृक्ष है, उसी प्रकार दान-दाताओं में भगवान एकलिंग का दीवान राणा भीमसिंह है।

योद्धाओं में भीमसेन, सत्यवादियों में युधिष्ठिर, भूदान करने वालों में बलि, कोशाधिपों में कुबेर, ऋषियों में वेदव्यास, सूर्यवंशियों में रामचन्द्र और यदुवंशियों में कृष्ण है, उसी प्रकार ( राजाओं में ) यह दूसरा ही राणा जगतसिंह ( भीमसिंह ) है ।

ज्ञान के ग्रंथों में जिस प्रकार गीता, लोकों में वैकुंठ, तीर्थों में गंगा-तीर्थ, पुष्पों में कमल और पक्षियों में गरुड़ है, उसी प्रकार राजाओं में राणा भीमसिंह है । हे राणा अरिसिंह के पुत्र ! तुलना करते हुए तेरे गुणों का पार नहीं आता ( वास्तव में ) तू शिरोमणियों का भी शिरोमणि है ।

## [९०] महाराणा भीमसिंह का प्रभाव

गीत ( छोटा साणोर )

गत देणी जका खळ हळे गँगा,
पलटे नहीं प्रतव्रता पतां ।
छतीयां पणे कळू किम छावै,
छत्र धारी भीमेण छतां ॥१॥
अंब फळै विप्र वेद उचारै,
नारण घटे सु नाव नतै ॥
अषपतियां नासत किम आवै,
जस लोभी खाट रा जतै ॥२॥
सुरभी अजे खीर थण स्रावै,
धरम चतो चड बरस धडै ।
बरतै कद माठम खत्रियां वट,
राजा कुल सीसोद रढै ॥३॥
धारां सत अंब बेद गउ भ्रम,
त्रऊ दूना इन गया तजै ।

देग तेभ लाची कद दीसै,
अद साखी सारखा अजै ॥४॥

( रचयिता:– अज्ञात )

अर्थ:— जिस प्रकार गंगा के रहते हुए मोक्ष-मार्ग में रुकावट एवं पतिव्रता स्त्रियों के रहते हुए पातिव्रत्य ( धर्म ) का नाश होना असम्भव है, ठीक उसी प्रकार छत्रधारी राणा भीमसिंह के होते हुए क्षत्रियों में कलियुगी असर का होना असम्भव है।

अभी तक आम के वृक्ष फलते फूलते हैं, ब्राह्मण वेद का उच्चारण करते हैं, ईश्वर रूप में नारायण घट २ में स्थित है, अतः जहां तक नाटे कद वाला यश का लोभी ( महाराणा भीमसिंह ) है, वहां तक राजाओं में नास्तिकता कैसे आ सकती है ?

गौएँ अभी तक स्तन से दूध टपकाती हैं, चारों वर्ण के चित्त में धर्म की धारणा है, अतः जहां तक राज वंश में शिशोदिया राणा भीमसिंह है, वहां तक क्षत्रियों में कृपणता का प्रसार कैसे हो सकता है ?

अभी तक गंगा का इस प्रकार प्रवाहित होना, स्त्रियों में सतीत्व का होना, आम के वृक्षों का फलना, ब्राह्मणों में वेदोच्चारण होना, गौओं का दूध देना और चारों वर्णों का धर्म को नहीं छोड़ना है, तब राणा अरिसिंह के पुत्र ( भीमसिंह ) के होते हुए दान और खड्ग में कमी कैसे आ सकती है ?

## [६१] चार रानियों एवं उप पत्नियों का सती होना

गीत ( बड़ा साणौर )

हुवो अचाणक अंत सुण भांण हिंद वाणियां,
मने हरखाणिया तुरत माली।
जे चली कनामप चहूँ जग जाणियां,
चहूँ पटराणियाँ साथ चाली ॥१॥

राम रामेत राणी पद्म रटांणी,
महाणी लोभ झाली समाजां ।
हरख पूंवार चत चढ़ाणी ऊ हली,
राज हली भटाणी जुरंभ सांजा ॥२॥
चली मोती लगन गगन मग चाहती,
भली मन मगन गुण राय भाळां ।
तन दगन कज चली राय–जमना तदन,
झल दगन नेह सह अगन झाळां ॥३॥
सोल सणगार मन भावतां सजाऊ,
चालता लजाऊं चाल छांगी ।
उमंग जांगी दिया रजाऊ आवतां,
( जुंही ) जावतां जुझाऊ दिया जांगी ॥४॥
अंग पवसाक भल हलंण तप उम्रवट,
सुघँगबळ कळ चत नपट सेठी ।
सजे अत उमँग जट पर मलण साम हूं,
वलण धोमग लपट बीच बैठी ॥५॥
तत मुकत धामा सत सकत ता लग्गई,
चग्गई सुरत पत वरत चाहै ।
छोहों कुळ वटां सोभा बदन छल गई,
मलगई अगन झळ पटा माहें ॥६॥
वळ कुलँ नरांपुर सुरा वाखाणियां,
सुवप हो माणिया गणो महला ।
मेहेल इन्द्र लोक रंग राज कै माणीयां,
माणीयां रंग सत लोक महलां ॥७॥

( रचयिता:– अज्ञात )

अर्थः— हिंदु सूर्य महाराणा ( भीमसिंह ) का निधन अचानक सुनकर राज महिषियां मनमें हर्षित होती हुई सती होने के लिये शीघ्रता पूर्वक तैयार हो गई। चारों उपपत्नियां एवं चारों राजरानियां पति के साथ गमन करने को चलीं। यह बात सारे संसार को ज्ञात हो गई ।

राम नाम का जप करती हुई राठौर वंश की रानी पद्म कुमारी, सांसारिक ममत्व को दूर करने वाली, झालावंशीय रानी सभाकुमारी, पंवार वंश की ( चावड़ी ) रानी हरककुमारी और भाटी कुल की रानी राजकुमारी चमचमाते वस्त्राभरणों से सुशोभित होकर जलने के लिये चल पड़ी।

स्वर्ग-मार्ग की इच्छा करती हुई राणा की चारों,मोतीबाई, मन मगनबाई, गुणराय बाई, जमुना बाई उपपत्नियां प्रेम की लग्न में अग्नि-ज्वाला सहन कर शरीर को जलाने के लिये चली।

सोलहों शृंगारों से सज कर उन्होंने चलते समय परदा प्रथा तोड़ दी। उनके ( विवाहित होकर ) आने पर नक्कारचियों ने जिस प्रकार राज-सी बाजे बजाये थे। वैसे ही आज भी सह गमन करते समय वीर रस पूर्ण बाजे बजाये जाने लगे ।

ज्वाला के ऊपर उठने पर उनकी शारीरिक पोशाक ( वस्त्रादि ) जल उठी। चिता के ठीक जल उठने पर अधिक प्रकाश हो गया । वे अत्यन्त उमंग के साथ धूम्र-मार्ग से पति-मिलन के लिये शीघ्रता पूर्वक ज्वाला में जा बैठी।

मोक्ष को अति शीघ्र प्राप्त करने के लिये वे ( रानियां ) सती होते समय शक्ति-सी दीख पड़ी । उस समय पातिव्रत्य का तेज उनके चेहरे से टपकता था। कुलीनता का उत्साह और सौन्दर्य उस समय उनके मुख पर झलक रहा था। वे सतियां तत्काल अग्नि-ज्वाला में समा गई।

इस प्रकार उनके दग्ध ( सती ) होने को समस्त पुरवासियों एवं देवताओं ने सराहा। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक सहज ही अपने श्रेष्ठ अंगों को अग्नि में स्वाहा कर दिया । इस लोक में महाराणा के साथ आमोद प्रमोद ( रंगरेलियां ) मनाया करती थीं; आज वे ( रानियां ) सती होकर सत्यलोक स्वर्ग के राज-प्रासादों में ( पति के साथ ) विनोद करने लगी।

# शुद्धि-पत्र

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| नापे | बापे | १ | ६ |
| भीम | जो भीम | २ | ४ |
| वश | वंश | ,, | ११ |
| असत | हसत | ५ | ८ |
| ठांण | ढांण | ,, | ,, |
| सुन्ढ | भुण्ड | ६ | ७ |
| थराशायी | धराशायी | ६ | ६ |
| तरक्का | हरक्कां | ७ | १७ |
| मेघ | मेदा | १३ | १७ |
| दिखालं | दिखालें | १८ | २१ |
| ही | ह्वी | १६ | २३ |
| सेवा | सेना | २१ | ६ |
| खेपे | खपे | ,, | ६ |
| मोर-वंशज | मीर-वंशज | २७ | १४ |
| शत्र बादशाह | शत्रु ( बादशाह ) | ३१ | २१ |
| बदशाह | बादशाह | ३२ | १ |
| जीतोबीजोय | जितो बिजोय | ३७ | १३ |
| भयँक | मयँक | ,, | १६ |
| आके | आपके | ४२ | १० |
| धणे | घणे | ४३ | ६ |
| हिंदू | दिहुँ | ,, | १७ |
| ( जनतसिंह ) | ( जगतसिंह ) | ५२ | २३ |
| कृपाणों | कृपणों | ,, | २४ |
| का | की | ,, | ,, |
| बसेत | बसेस | ५३ | ११ |
| वांध मरा | वाघंबरा | ५३ | २१ |
| क्यों | क्योंकि | ५६ | १० |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
| --- | --- | --- | --- |
| घोड़े | धोड़े | ५८ | २१ |
| ववाहै | बचा है | ५६ | ८ |
| आगे | अगे | ६० | ३ |
| कभ | कभी | ६३ | २० |
| प्रणों की | प्राणों की | ६४ | १८ |
| कहने लगी·········। | कहने लगी एवं देवता. नर और नाग चकित होगये । | ६७ | २३ |
| राणा सांगा | राणा जगतसिंह | ,, | ,, |
| नभ लोका | नभ लोक | ६८ | १ |
| नभलोक | नभ लोक से | ,, | २ |
| ओ ै | ओपै | ,, | १५ |
| देवां एम | देवा एम जेम | ,, | १६ |
| वे ( राणा और बादशाह ) | वे ( सिंह ) | ६६ | ६ |
| कसियो | कहियो | ७० | १ |
| हूयो | हूंतो | ,, | ३ |
| काखां | झाखां | ,, | २१ |
| दिया | दियो | ७३ | १६ |
| झकड़ | जकड़ | ७६ | ६ |
| अँगज | अगँज | ,, | २१ |
| सुमल्ली | सुभल्ली | ८४ | १ |
| मह राणा | महाराणा | ८५ | ११ |
| मीह लीणो | मीहणो | ,, | २० |
| घण | घणा | ८६ | २ |
| लाखां | लाखों | ,, | १५ |
| सिर दर्द | सिर दर्द बन गया | ,, | १६ |
| वाण | वाणक | ८८ | ७ |
| अरिसीध | अरिसींघ | ,, | ,, |
| फहरँगी | फरँगी | ,, | ११ |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
| --- | --- | --- | --- |
| सिखुड़ | सिकुड़ | ८९ | ६ |
| शशोदिया | शिशोदिया | ९१ | ३ |
| स्वाम | स्वामी | ९६ | १६ |
| टसाल | नटसाल | ,, | १९ |
| क | के | ९७ | ९ |
| गाँजी | गांजीव | ,, | १६ |
| श्रोध | श्रोघ | ९९ | ३ |
| ( गलाकर ) | ( गलकर ) | ,, | १५ |
| अड़स | अड़स-तण | १०१ | ८ |
| नमी | जमी | १ २ | ५ |
| धम धमी | घमघमी | ,, | १२ |
| सन करेगा | सहन करेगा | १०४ | ७ |
| मिंह | सिंह | ,, | २१ |
| गयण गरी | गयणा गरो | १०६ | ८ |
| सहलां | सलहां | १०७ | २६ |
| धमधमी | घमघमी | १०८ | २ |
| टाको | हाको | ११० | २४ |
| आयेला | ओयणा | ,, | ,, |
| छले धले | धले-धले | १११ | २ |
| जंघां-बाघरेस | जंघां-बाधरेस | ,, | ४ |
| सा | सो | ,, | ८ |
| ज्या का रीठ | आकारीठ | ,, | २० |
| उडो ो | उडेबो | ११२ | ३ |
| चौ तरफां | चौतरफां | ,, | १५ |
| चस्कटों | चरकटों | ११३ | १० |
| कु मलों | कुम्भालों | ,, | २० |
| बरछां | बरछों | ११४ | १ |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| सहस्त्र बिहु | सहस्रबाहु | ,, | २६ |
| रहे है | रहा है | ११६ | ७ |
| पर-बाणी | पूर-बाणी | ११६ | २२ |
| न बंदै | नबंदै | ११७ | ३ |
| ( चंचल ) | ( चंचल ) घोड़ों का | ,, | ८ |
| बावाड़ | गवाड़ो | ११८ | ७ |
| पढ़ाला | पढाला | १२० | १ |
| दध-पान | दध-पाज | १२३ | १४ |
| ही डुल | हींडुल | १२४ | २४ |
| कटियो | कहियो | १२६ | १२ |
| अकित | अंकित | ,, | १६ |
| ढानी | दानी | १२७ | २४ |
| तणात्र | त्रणात्र | १२८ | २ |
| हम वीर | हमगीर | ,, | २४ |
| कथ पा | कथ या | १२६ | ३ |
| भीमा अंद | भीमाअंद | ,, | ५ |
| घणी | धणी | ,, | ,, |
| स्वान | ध्वनि | ,, | १३ |
| निकाल | निकाली | १३१ | २१ |
| [ ५८ ] | [ ८५ ] | १३२ | १४ |
| जोड़ा | जोड़ी | ,, | १८ |
| बिलाल | बिलाला | १३३ | ६ |
| लूबी | लूंबी | ,, | १५ |
| धरा | धटा | ,, | १६ |
| ( कवि ) | ( कवि को ) | १३४ | १६ |
| घटा ( क्षेत्र ) | धटा ( क्षेत्र विशेष ) | १३५ | ८ |
| के चन्द्रमा | द्वितीया के चन्द्रमा | ,, | १८ |
| सोतल | सीतल | १३७ | २१ |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| ( बालों ) | ( बोलो ) | १३८ | ५ |
| जनंजे | धनंजे | १३६ | २५ |
| संस | सेंस | ,, | २६ |
| पंहुवा | पंडवां | १४० | ७ |
| नाव | नाह | १४१ | १६ |
| चड | चउ | ,, | २० |
| तेभ | तेग | १४२ | १ |
| भहाणी | मटाणी | १४३ | २ |
| जुलंभ | झुलंब | ,, | ४ |
| जट पर | जट पट | ,, | १५ |
| धामा | धाम | ,, | १७ |
| झल् पटा | झलपटां | ,, | २० |
| हो माणिय | होमाणिया | ,, | २२ |
| श्रष्ठ | श्रेष्ठ | १४४ | २४ |